अक्तूबर-दिसंबर
October-December

वर्ष 29
अंक : 117

2023

ISSN : 0976-0024

महिला Mahila
विधि भारती
Vidhi Bharati

विधि चेतना की द्विभाषिक (हिंदी-अंग्रेजी) शोध पत्रिका
Research (Hindi-English) Quarterly Law Journal

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय, शिक्षा मंत्रालय के आंशिक अनुदान से प्रकाशित)

ISSN 0976-0024
9 770976 002001

PEER REVIEWED REFREED JOURNAL

प्रधान संपादक
सन्तोष खन्ना
संपादक
डॉ. उषा देव
अतिथि संपादक
डॉ. शीतल प्रसाद मीना

पत्रिका में व्यक्त विचारों से सम्पादक/परिषद् की सहमति आवश्यक नहीं है।

Indexed at Indian Documentation Service, Gurugram, India
Citation No. MVB-29/2022-2023

विधि भारती परिषद्

बी.एच./48 (पूर्वी) शालीमार बाग, दिल्ली-110088 (भारत)
मोबाइल : 09899651872, 09899651272, **फ़ोन :** 011-45579335
E-mail : vidhibharatiparishad@hotmail.com, santoshkhanna25@gmail.com
Website : www.vidhibharatiparishad.in

PEER REVIEWED REFREED JOURNAL

'महिला विधि भारती' पत्रिका (पूर्व यू.जी.सी. की सूची में भी शामिल, क्र. 156, पत्रिका संख्या 48462)
विधि चेतना की द्विभाषिक (हिंदी-अंग्रेज़ी) विधि-शोध त्रैमासिक पत्रिका
E-mail : vidhibharatiparishad@hotmail.com
Website : www.vidhibharatiparishad.in

वर्ष 29, अंक : 117, (अक्तूबर-दिसंबर, 2023)

प्रधान संपादक : सन्तोष खन्ना, **संपादक :** डॉ. उषा देव
अतिथि संपादक : डॉ. शीतल प्रसाद मीना

बोर्ड ऑफ रेफरीज़ एवं परामर्श मंडल

1. डॉ. के.पी.एस. महलवार : चेयर प्रो., प्रोफेशनल एथिक्स, नेशनल लॉ यूनिवर्सिटी, न.दि.
2. डॉ. चंदन बाला : डीन एवं विभागाध्यक्ष, विधि विभाग, जयनारायण व्यास वि.वि., जोधपुर
3. डॉ. राकेश कुमार सिंह : पूर्व डीन एवं विभागाध्यक्ष, फैकल्टी ऑफ लॉ, लखनऊ विश्वविद्यालय
4. डॉ. किरण गुप्ता : पूर्व विभागाध्यक्ष, फैकल्टी ऑफ लॉ, दिल्ली विश्वविद्यालय
5. प्रो. (डॉ.) सिद्धनाथ सिंह : पूर्व डीन एवं विभागाध्यक्ष, विधि विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय
6. डॉ. सुरेंद्र यादव : निदेशक, स्केल विधि महाविद्यालय, अलवर

परिषद् की कार्यकारिणी, संरक्षक : डॉ. राजीव खन्ना

1. डॉ. सुभाष कश्यप (अध्यक्ष)
2. न्यायमूर्ति श्री लोकेश्वर प्रसाद (उपाध्यक्ष)
3. श्रीमती सन्तोष खन्ना (महासचिव)
4. रेनू (कोषाध्यक्ष)
5. श्री अनिल गोयल (सचिव, प्रचार)
6. डॉ. प्रेमलता (सदस्य)
7. डॉ. आशु खन्ना (सदस्य)
8. डॉ. पूरनचंद टंडन (सदस्य)
9. डॉ. उषा टंडन (सदस्य)
10. डॉ. सूरत सिंह (सदस्य)
11. डॉ. के.एस. भाटी (सदस्य)
12. डॉ. शकुंतला कालरा (सदस्य)
13. डॉ. उमाकांत खुबालकर (सदस्य)
14. अनुरागेंद्र निगम (सदस्य)

शुल्क दर

वार्षिक शुल्क 500/-- रुपए
संस्थागत वार्षिक शुल्क 500/-- रुपए
आजीवन शुल्क 5,000/-- रुपए
संस्थागत आजीवन शुल्क 20,000/-- रुपए

डाक शुल्क अलग

अंक 117 में

1. हमारे लेखक -- 206
2. संपादकीय -- 309
3. मंत्रालय विभागों से संबद्ध संसदीय समितियाँ / **सतीश चंद्र रस्तौगी** -- 313
4. भारतीय साक्ष्य विधेयक, 2023 : एक समीक्षा / **डॉ. प्रमोद कुमार अग्रवाल** -- 318
5. राज्यपाल एवं संविधान सभा / **डॉ. भगवानदास** -- 321
6. महिला गरिमा का गौरव : समान नागरिक संहिता / **सन्तोष खन्ना** -- 329
7. मत्स्य न्याय और मानव अधिकार / **जस्टिस मार्कंडेय काटजू** -- 336
8. विमुद्रीकरण -- विशेषकर भारत के संदर्भ में और उच्चतम न्यायालय का निर्णय / **डॉ. ममता चतुर्वेदी** -- 339
9. स्टेल्थिंग (Stealthing) का कार्य : मुद्दे और चुनौतियाँ / **डॉ. (प्रो.) राकेश कुमार सिंह** -- 353
10. प्रतिष्ठित समाज की कुत्सित व संकीर्ण मानसिकता का धुंधला चेहरा : कन्या भ्रूण हत्या / **लता रानी चौहान** -- 358
11. कैंसर उपचार में रोगी अधिकार : कैंसर की रोकथाम और नियंत्रण के लिए प्रभावी क़ानून की आवश्यकता / **सत्यम चंसोरिया** -- 363
12. स्वास्थ्य का अधिकार, एक मौलिक अधिकार : कोविड-19 / **डॉ. ज्योति दिवाकर** -- 369
13. समान नागरिक संहिता समय की माँग है (रिपोर्ट) / **डॉ. शकुंतला कालरा** -- 376
14. कृष्ण और मानव अधिकार : एक अवलोकन / **डॉ. आलोक चांटिया** -- 379
15. Trajectory of Panchayati Raj in India / **Prof. Narain Dutt** -- 382
16. Domestic Violence Act, 2005 and the Role of NGOs / **Dr. Sudha Kumari** -- 387
17. The impact of pregnancy-related discrimination on women's employment rights in India / **Shweta Rajput** -- 389
18. Impact of Improper Handling of Bio-Medical Waste on Citizem's Right in India During Pandemic : A Study / **Dr. Janardan Kumar Tiwari and Garima Rajput** -- 393
19. Need of Protection Personal Liberty of And Individual / **Dr. ----------------** -- 399

हमारे लेखक

सतीश चंद्र रस्तौगी : टी-16/1126, पूर्वांचल रॉयल पार्क, सेक्टर-137, नोएडा, गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश-201304 **मोबाइल :** 09810938630

डॉ. प्रमोद कुमार अग्रवाल : 432/469 सी.पी. मिशन कंपाउंड, सिविल लाइन्स, झाँसी (उत्तर प्रदेश), पिन कोड-284003, **ई-मेल :** pk_usha@rediffmail.com
मोबाइल : 9650002565

डॉ. भगवानदास : प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय बंडा, विद्रोही भवन
डॉ. भगवानदास : मकरोनिया, सागर प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय बंडा

सन्तोष खन्ना : प्रधान संपादक, 'महिला विधि भारती' पत्रिका, शालीमार बाग

जस्टिस मार्कंडेय काटजू : 00000000000000

डॉ. ममता चतुर्वेदी : 00000000000000

प्रो. (डॉ.) राकेश कुमार सिंह : प्रोफेसर एवं पूर्व संकायाध्यक्ष एवं विभागाध्यक्ष, विधि संकाय, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

लता रानी चौहान : अस्सिटेंट प्रोफेसर, बी.एस. अनगंपुरिया इंस्टीट्यूट ऑफ लॉ, आलमपुर फरीदाबाद

सत्यम चंसोरिया : 000000000000000

डॉ. ज्योति दिवाकर : सहायक प्राध्यापक, विधि, विधि महाविद्यालय शिवपुरी (म.प्र)

डॉ. शकुंतला कालरा : सेवानिवृत्त एसोसिएट प्रोफेसर, मैत्रेयी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय **संपर्क :** एन.डी.-57, पीतमपुरा दिल्ली-110034, **मोबाइल :** 8287479455, 9958455392, **दूरभाष :** 011-27318835

डॉ. आलोक चांटिया : अखिल भारतीय अधिकार संगठन।

Prof. Narain Dutt : Former Assistant Professor at Dyal Singh College, Karnal, Haryana and Master trainer HIRD Nilokheri, Karnal, Haryana

Dr. Sudha Kumari : Ex-IRS, New Delhi, (Mob. 9401991984)

Shweta Rajput : 0000000

Dr. Janardan Kumar Tiwari : Institute of Law, Jiwaji University, Gwalior

Garima Rajput : Research Scholar, Institute of Law, Jiwaji University, Gwalior

संपादकीय

भारत ने 11 अगस्त, 2023 को विधि के क्षेत्र में एक नया इतिहास रच दिया है। इस दिन भारत की संसद में तीन नए क़ानून पेश किए गए। भारत में अंग्रेजों द्वारा बनाए गए भारतीय दंड संहिता, 1860, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 और साक्ष्य अधिनियम, 2023 के स्थान पर अब नए विधेयक यथा भारतीय न्याय संहिता, 2023, भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता विधेयक, 2023 तथा भारतीय साक्ष्य विधेयक, 2023 प्रस्तुत किए गए है। केंद्रीय गृहमंत्री श्री अमित शाह ने इन विधेयकों को लोकसभा में प्रस्तुत करते हुए कहा कि यह तीनों क़ानून अंग्रेजों द्वारा बना कर लागू किए गए थे, इसलिए भारत में अब तक वर्ष 1860 से लेकर 2023 तक देश की आपराधिक न्याय प्रणाली अंग्रेजों के मुताबिक़ बनाए गए इन क़ानूनों से चलती थी। अब इन तीनों क़ानून के स्थान पर नए क़ानून लाए जा रहे हैं। इन नए क़ानून का उद्देश्य भारतीय नागरिकों को अधिकार देना है दंड नहीं। उन्होंने यह भी बताया कि नए क़ानून को लाने से पहले 18 राज्यों, 6 संघशासित प्रदेशों, उच्चतम न्यायालय, 16 उच्च्य न्यायालय, 5 न्यायिक अकादमी, 22 विधि विश्वविद्यालय, 142 सांसद, लगभग 270 विधायकों और जनता ने इन नए क़ानूनों पर अपने सुझाव दिए थे। 4 सालों तक इस पर गहन विचार विमर्श के बाद इसे तैयार कर संसद में पेश किया गया है।

यह बात बिल्कुल सही कही गई है कि इन क़ानूनों में बदलाव की लंबे समय से मांग की जा रही थी। भारतीय दंड संहिता, 1860 में बने क़ानून को मैकाले ने लिखा था । अब तक इस क़ानून को लागू हुए 163 वर्ष हो गए हैं और इन्हें हम पर राज करने वाले अंग्रेजों ने बनाया था । देश को स्वतंत्र हुए अब तक 76 वर्ष हुए परंतु हम अधिकांशतः अंग्रेजों द्वारा बनाए क़ानूनों से ही अनुशासित हो रहे हैं । ऐसा पहली बार हो रहा है कि भारतीय दंड संहिता, 1860 के स्थान पर एक नया क़ानून भारतीय न्याय संहिता, 2023 लाया जा रहा है। इन दोनों संहिता में मूल अंतर यह है कि भारतीय दंड संहिता में दंड पर जोर था क्यूंकि अंग्रेज भारत की जनता को दबा कर, डरा कर और क़ानून से धमका कर रखना चाहते थे ताकि वह उनके अत्याचारों के समक्ष अपना सर न उठा सके। इस क़ानून प्रणाली का एक दुष्परिणाम भारत में यह हुआ है कि क़ानून की इस व्यवस्था में मुकदमे प्रायः लटकते रहते हैं और वादी-प्रतिवादियों को उनके जीवन काल में न्याय नहीं मिल पाता है। अब भारतीय दंड संहिता, 1860 का नाम भी बदल दिया गया है। यह वस्तुत सच्चाई है कि अंग्रेजों ने

न केवल हम पर अपनी शासन व्यवस्था और क़ानून थोपे बल्कि उन्होंने इनको अपनी भाषा अंग्रेजी के माध्यम से हम पर थोपा। अब भारतीय न्याय संहिता, 2023 की एक विशेषता यह है न केवल संहिता का नाम भारतीय भाषा हिंदी में है बल्कि इसका उद्देश्य भी भिन्न है अर्थात् दंड पर नहीं न्याय पर अधिक जोर देना है।

नई भारतीय न्याय संहिता, 2023 में केवल 356 धाराएँ हैं जबकि पुरानी भारतीय दंड संहिता में 511 धाराएँ हैं। इसमें 155 धाराएँ कम होंगी। इसकी 176 धाराओं में बदलाव किया जा रहा है, 22 धाराएँ हटा दी गई हैं और 8 नई धाराएँ जोड़ी गई हैं। हत्या के अपराध में लागू होने वाली धारा 302 को हटा कर उसके स्थान पर अब धारा 101 हो जाएगी ।

यहां भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 124ए का उल्लेख करना समीचीन होगा। वास्तव में भारतीय परिपेक्ष्य में पहले भी और आजकल भी इस धारा को लेकर बहुत विवाद चलता आ रहा है। वर्तमान काल में भी उच्चतम न्यायालय में इस धारा को समाप्त करने के लिए सुनवाई चल रही थी जिसमें सरकार ने उच्चतम न्यायालय में शपथ पत्र फाइल कर अनुरोध किया था कि भारत सरकार स्वयं इस धारा की समीक्षा कर रही है इसलिए फिलहाल इस पर सुनवाई को रोक दिया जाए । इस धारा को उच्चतम न्यायालय में यह कोई पहली बार चुनौती नहीं दी गई है। सातवें दशक में भी उच्चतम न्यायालय में इस धारा को समाप्त करने के लिए चुनौती दी गई थी और उच्चतम न्यायालय ने एक मामले में इसे संवैधानिक ठहराया था। अब नई भारतीय न्याय संहिता में राजद्रोह संबंधी इस धारा को खत्म कर दिया गया है। अंग्रेजों ने इस धारा को देशद्रोह की धारा बताया था जब कि यह वस्तुतः राजद्रोह की धारा से संबंधित है। देशद्रोह संबधी अपराध के लिए अब नई भारतीय न्याय संहिता, 2023 में एक धारा 150 जोड़ी गई है जिसके अंतर्गत देश के ख़िलाफ युद्ध छेड़ने के मामले लिए जाएँगे। इसमें सशस्त्र विद्रोह, देश को तोड़ना, अलगाववादी गतिविधियों में सम्मिलित होना, देश की एकता और अखंडता को ख़तरा पहुँचाए जाने के अपराध जोड़े गए हैं । इस नई धारा में अब देशद्रोह के मामले लिए जाएँगे।

धारा 120बी जिसे आपराधिक साजिश के लिए इस्तेमाल किया जाता है उसकी संख्या भी बदल गई है। अब वे 61वें नंबर पर होगी। जब भी कही दंगा या बवाल होता है तो पुलिस तुरंत धारा 144 लगा देती है। सीआरपीसी में धारा 144 भीड़ जमा होने से रोकने के लिए लगाई जाती है। भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 में अब ये धारा 163 हो जाएगी।

इस नई संहिता में महिलाओं और बच्चों के ख़िलाफ अपराधों में सजा को प्राथमिकता दी गई है। छोटे अपराधों के लिए सामुदायिक सेवा के दंड को नए क़ानून में शामिल किया गया है। यदि कोई व्यक्ति छोटी मोटी चोरी जैसे मामलों में पकड़ा जाता है तो उसे बड़ी सजा देने की जगह कहा जाएगा 'जाओ समाज के लिए कुछ अच्छा काम करो।' उसे काम बता दिया जाएगा। ये पहली बार शामिल किया जा रहा है। नए क़ानून में गैंगरेप के दोषियों को 20 साल से लेकर उम्र क़ैद तक की सजा का प्रावधान है। नाबालिग से बलात्कार पर इसे

सख़्त करते हुए मृत्यु दंड तक की सजा कर दी गई है। शादी या नौकरी का झांसा देकर रेप करने पर अलग से सजा का प्रावधान है।

मॉब लिंचिंग केस में 7 साल से उम्र क़ैद तक की सजा है। अगर भीड़ में कोई किसी को पकड़कर मारता है तो उसे अब अलग क़ानून में अब रखा गया है। अभी तक धारा 302 में ही ऐसे केस को शामिल किया जाता था। मामले में जल्द कार्रवाई के लिए जो जीरो एफआईआर की सुविधा है उसमें अब कुछ बदलाव किया गया है। केस पर जल्द कार्रवाई के लिए अब जिस थाने का केस होगा वहाँ जीरो एफआईआर 15 दिन के अंदर भेजनी होगी। जीरो एफआईआर का मतलब है आप राज्य के किसी भी शहर या थाने में जाकर अपना एफआईआर दर्ज करा सकते हैं। इससे फर्क नहीं पड़ता है कि केस किस थाने या शहर का है। साल 2012 में निर्भया गैंग रेप मामले के बाद केंद्र सरकार ने देश में बढ़ते गंभीर मामलों को रोकने के लिए जीरो एफआईआर की व्यवस्था लागू करने का फ़ैसला किया था। नए क़ानून में एफआईआर से लेकर पूरी प्रक्रिया तक डिजिटाइजेशन की बात कही जा रही है। हर केस में चार्जशीट 90 दिन में दाखिल करनी होगी। अगर कोई न्यायालय चाहे तो 90 दिन इसे और बढ़ा सकता है। लेकिन 180 दिन से ज़ूयादा का समय नहीं मिलेगा। नए क़ानून में चार्जशीट मिलने के 60 दिन के भीतर आरोप तय करने की बात प्रस्तावित है। सबसे खास बात ये है कि सुनवाई पूरी होने के 30 दिन के अंदर न्यायालय को अपना फ़ैसला सुनाना होगा। लेकिन अगर जरुरी हुआ तो इसे 60 दिन तक बढ़ाया जा सकता है। न्यायालय का फ़ैसला 7 दिन के अंदर ऑनलाइन उपलब्ध कराने की बात कहीं गई है। समरी ट्रायल को तीन साल की सजा में अनिवार्य किया जाएगा। पहले ये दो साल तक की सजा में अनिवार्य था। माना जा रहा है कि इससे सेशन कोर्ट में केसों की संख्या में 40 फीसदी तक की कमी आएगी। निचले न्यायालयों में इससे न सिर्फ काम का बोझ कम हो सकेगा बल्कि मामलों के निपटारे में भी तेजी आएगी। दरअसल, समरी ट्रायल का मतलब है कम गंभीर मामलों की तेजी से सुनवाई कर केस का निपटारा करना। इनमें वे केस शामिल होंगे जिनकी अधिकतम सजा तीन साल तक की है। मामले के तुरंत निपटारे और सही जाँच के लिए नए क़ानून में किसी भी क्राइम सीन में अब फॉरेंसिक टीम का वहाँ जाना जरुरी कर दिया गया है। नए क़ानून में पहली बार अपराध करने वाले को एक तिहाई सजा काटने के बाद खुद जमानत मिल जाएगी। लेकिन आजीवन कारावास या मौत की सजा पाए व्यक्ति को ये छूट नहीं मिलेगी।

अब बात करते हैं नए प्रस्तावित क़ानून भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 की।इसे वर्तमान भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के स्थान पर लाया जा रहा है। इसका मूल नाम भी अब भारतीय भाषा हिंदी में कर दिया गया है। वर्तमान में दंड प्रक्रिया संहिता के संबंध में भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अंतर्गत दिए गए प्रावधानों से नियंत्रित होती है। इसके अंतर्गत जाँच, गिरफ्तारी, मुकदमा और अपील सहित अनुपालन किए जाने वाली प्रक्रिया का प्रावधान है। अब नए क़ानून में नए प्रावधान किया जा रहे हैं। भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता,

1973 को स्वतंत्र भारत में 41वें विधि आयोग की सिफारिशों के आधार पर बनाया गया था और इसे संसद से पारित होने के बाद एक अप्रैल, 1974 को लागू किया गया था। इस प्रक्रिया संहिता में वर्ष 2013 और 2014 में संशोधन किए गए थे। इस संहिता में 484 धाराएँ, 37 अध्याय और दो अनुसूचियां हैं। यह संहिता कश्मीर पुनर्गठन अधिनियम, 2019 के बाद जम्मू और कश्मीर सहित देश के सभी भागों में लागू है। इसका उद्देश्य देश के अपेक्षाकृत गरीबों को शीघ्र और निष्पक्ष न्याय दिलाना था। यह संहिता स्वयं में काफी विस्तार लिए है।

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 को भारत में एक सितंबर, 1872 में लागू किया गया था, अब उस के स्थान पर नया प्रस्तावित भारत साक्ष्य विधेयक, 2023 लाया जा रहा है। पुराने क़ानून में 185 धाराएँ और ग्यारह अध्याय हैं, ने प्रस्तावित विधेयक में 170 धाराएँ होंगी, 23 धाराओं में बदलाव किया गया है, एक नई धारा जोड़ी गई है और 5 धाराएँ निरस्त की गई हैं। साक्ष्य की ष्टि से इसे अधिक व्यवहारिक बनाया जा रहा है।इस विधेयक में साक्ष्य को इलेक्ट्रॉनिक उपकरण या सिस्टम द्वारा जानकारी को प्रस्तुत किया जा सकेगा।इसके अलावा, यह विशेषज्ञ की मेडिकल राय, लिखावट, विश्लेषण जैसे साक्ष्यों को भी मान्यता देगा।

जब अगस्त, 2023 में संसद में इन विधेयकों को पेश किया गया था तो इन्हें सभा ने समिति को विचार के लिए प्रेषित कर दिया था। अब इन पर समिति का प्रतिवेदन आ चुका है और समिति ने इन विधेयकों पर अपनी कुछ सिफारिशें भी की हैं। अब भारत सरकार उन सिफारिशों को ध्यान में रख कर इन विधेयकों का अंतिम प्रारुप तैयार कर उन पर संसद में चर्चा के लिए प्रस्तुत करेगी और अगर सब ठीक-ठाक चला तो यह तीनों क़ानून संसद में पारित हो राष्ट्रपति की सहमति के लिए चले जाएँगे और राष्ट्रपति की सहमति मिलते ही क़ानून बन जाएँगे और अंग्रेजों द्वारा बनाए गए क़ानून अतीत की वीथिका में पहुँच जाएँगे। नारी शक्ति वंदन अधिनियम 2023 की तरह क़ानून के क्षेत्र में एक और नया अध्याय जुड़ जाएगा। जय भारत, वंदेमातरम।

❑

सतीश चंद्र रस्तौगी

मंत्रालय विभागों से संबद्ध संसदीय समितियाँ

हम भारत के लोगों ने जिस संविधान को आत्मर्पित किया उसके उद्देश्यों में लोकतंत्रात्मक गणराज्य की स्थापना मुख्य है। इसका अर्थ है कि देश की सत्ता जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा चलाई जाए। इसका एक प्रभाव यह भी है कि देश की समस्त संपदा पर जनता का अधिकार है। सरकार भी इस चुने हुए प्रतिनिधियों के अनुमोदन/स्वीकृति के बिना भारत के संचित कोष/आकस्मिक कोष से कोई भी राशि व्यय नहीं कर सकती। इन प्रतिनिधियों का अनुमोदन/स्वीकृति पाने के लिए प्रत्येक वित्तीय वर्ष के प्रारंभ होने से पूर्व राष्ट्रपति अपनी सरकार के विभिन्न मंत्रालयों/विभागों की उस वित्त वर्ष की प्राक्कलित (एस्टिमेटड) प्राप्तियों और व्यय का विवरण संसद के दोनों सदनों में रखवाता है। इस विवरण को वार्षिक वित्तीय विवरण कहा जाता है। आम भाषा में इसे ही बजट कहा जाता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि वित्त मंत्री द्वारा बजट लोक सभा में प्रस्तुत किया जाता है और उसके भाषण की समाप्ति के बाद बजट की प्रति लोक सभा के पटल पर रखी जाती है। भारत का वित्त वर्ष एक अप्रैल से प्रारंभ होकर आगामी वर्ष की 31 मार्च को समाप्त होता है। अतः संसद द्वारा बजट संबंधी कार्य एक अप्रैल से पहले ही संपन्न करना आवश्यक होता है। चुनाव वर्ष इसका अपवाद होता है।

प्रत्येक मंत्रालय/विभाग के लिए प्रस्तावित धनराशि को अनुदान माँग कहा जाता है। संविधान के उपबंधों के अधीन संसद के दोनों सदन बजट पर चर्चा करते हैं। संविधान के प्रावधानों के अनुसार लोक सभा को यह शक्ति प्राप्त है कि वह किसी अनुदान माँग को यथावत स्वीकृत करे या अस्वीकृत करे या किसी माँग को उसमें विनिर्दिष्ट राशि को कम करके स्वीकृत करे। राज्य सभा संचित निधि पर भारित अनुदान माँगों पर न चर्चा कर सकती है और न तो उनमें कोई कटौती कर सकती है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि राज्य सभा केवल बजट पर चर्चा कर सकती है, सुझाव दे सकती है पर उस सदन में अनुदान माँगों पर मतदान नहीं हो सकता।

अनुदान माँगों पर चर्चा करने और उन्हें पारित करने के लिए प्रत्येक वर्ष के प्रारंभ में संसद का जो सत्र बुलाया जाता है उसे बजट सेशन कहा जाता है। दशकों पूर्व तक बजट सत्र के प्रारंभ की तिथि अवधि प्रायः निश्चित होती थी। सामान्य वर्षों में बजट सत्र फरवरी माह के दूसरे सोमवार से शुरू होकर लगभग 12 सप्ताह की अवधि तक चलता था। इस अवधि में विभिन्न मंत्रालयों/विभागों की अनुदान माँगों पर विस्तृत चर्चा होती थी फिर मंत्रालय/विभाग की अनुदान माँगों पर चर्चा होती है और कितना समय देना है यह सब संबंधित सदन की

कार्य यंत्रणा सीमित की सिफारिश पर निर्भर करता है जिसे सदन द्वारा स्वीकार किया जाता है। जब सदन में अनुदान माँगों पर चर्चा होती है तब सदस्यों को उसमें भाग लगने का अवसर मिलता है और अनुदानों से संबंधित मंत्री उस पर चर्चा का उत्तर देता है। इस चर्चा के दौरान सदस्यों को अपने सुझाव देने का अवसर मिलता है। सदस्यों को यह अधिकार होता है कि किसी महत्वपूर्ण विषय की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित करने के लिए कटौती प्रस्ताव की सूचना दे। प्राप्त कटौती प्रस्तावों की सूचनाएँ सभी सदस्यों द्वारा परिचालित की जाती है और संबद्ध मंत्रालय/विभाग को भी भेजी जाती है।

जैसे-जैसे कार्यपालिका की गतिविधियाँ बढ़ती गईं, उसका व्यय भी बढ़ता गया। ऐसे में संसद के लिए सभी मंत्रालयों/विभागों की अनुदान माँगों पर चर्चा करना मुश्किल हो गया। चूँकि अनुदान माँगों व अन्य वित्तीय कार्य को निश्चित अवधि में पूरा करना होता है। अतः निर्धारित दिन व समय पर शेष सभी अनुदान माँगें लोक सभा के सम्मुख मतदान के लिए रख दी जाती हैं। इसे ही आम भाषा में 'गिलोटीन' कहा जाता है, अर्थ यह है जो सदस्य बोल रहा है वह अपना भाषण पूरा नहीं कर पाता और न ही संबंधित मंत्री चर्चा का उत्तर दे पाता है। वर्ष 2023-24 की सभी अनुदान माँगें लोक सभा द्वारा बिना किसी चर्चा के स्वीकृत कर दी गईं।

पिछले कई दशकों में यह देखा गया कि कार्यपालिका के कार्यकलाप और व्यय तो बढ़े पर विभिन्न कारणों के सदनों की बैठकें हर वर्ष सत्र-दर-सत्र कम होती गई हैं। यह अनुभव किया गया है कि ऐसी अवस्था में लोक सभा अपना संवैधानिक दायित्व ठीक से नहीं निभा पा रही है। इस स्थिति का विकल्प तलाशने के लिए गहन विचार विमर्श के बाद लोक सभा की नियम समिति ने वर्ष 1989 (आठवीं लोक सभा) में एक प्रस्ताव पर विचार करने के बाद तीन समितियों जिन्हें 'विषय समिति' (सब्जेक्ट कमेटी) कहा गया, के गठन की सिफारिश की। ये तीन समितियाँ थीं (1) कृषि, (2) पर्यावरण तथा वन; एवं (3) विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी संबंधी समितियाँ। सदन द्वारा नियम समिति की सिफारिशों के स्वीकार करने के बाद 18 अगस्त, 1989 में इन तीन समितियों का औपचारिक रूप से गठन किया गया।

जैसाकि इन समितियों के नाम से स्पष्ट है इनके द्वारा संबंधित मंत्रालयों/विभागों की अनुदान माँगों के अतिरिक्त उनके अन्य कार्यकलापों का परीक्षण किया जाना ही था। साथ-ही-साथ ये व्यय में मितव्ययता, संगठनात्मक सुधार, कार्यकुशलता व प्रशासनिक सुधारों के बारे में भी अपनी सिफारिशें दे सकती थी। यह आवश्यक था कि समिति की सिफारिशें संसद द्वारा स्वीकृत नीति के अनुकूल हों। इसके अतिरिक्त, ये संबंधित मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट, उनकी कार्य योजनाओं के बारे में भी अपनी सिफारिशें दे सकती थी।

इन तीन समितियों के गठन के सकारात्मक प्रभाव और उपयोगिता को देखते हुए लोक सभा की सामान्य प्रयोजन समिति एवं नियम समिति ने वर्ष 1992 (दसवीं लोक सभा) ने यह महसूस किया कि मंत्रालयों/विभागों से संबद्ध संसदीय समितियों की एक सुसंगठित प्रणाली हो जिनके कार्य-क्षेत्र में भारत सरकार का प्रत्येक मंत्रालय/विभाग आ जाए। राज्य सभा एवं

लोक सभा की सामान्य प्रयोजन समितियों एवं नियम समितियों ने वर्ष 1993 में इस विषय पर विचार करने के बाद यह निर्णय लिया कि विभिन्न मंत्रालयों/विभागों की अनुदान माँगों, विधेयकों आदि पर विचार करने के लिए स्थायी समिति प्रणाली का गठन किया जाए। दोनों सदनों के द्वारा इन समितियों की सिफारिशों को स्वीकार करने के बाद नई स्थायी समिति प्रणाली का 31 मार्च, 1993 को विधिवत् उद्घाटन किया गया। फलतः 8 अप्रैल, 1993 से 17 स्थायी समितियों का गठन किया गया। इनके गठन के फलस्वरूप अगस्त, 1989 में गठित तीन विषय समितियों का अस्तित्व समाप्त हो गया।

वर्ष 1993 में गठित 17 स्थायी समितियों में 11 लोक सभा के द्वारा एवं 6 राज्य सभा गठित हो गईं। लगभग एक दशक के बाद इस समिति प्रणाली की पुनः परीक्षा की गई और इनकी संख्या 17 से बढ़ कर 24 कर दी गई जिसमें 16 समितियों का गठन लोक सभा द्वारा व 8 समितियों का गठन राज्य सभा द्वारा किया जाने लगा। इस प्रकार 16 समितियाँ अध्यक्ष, लोक सभा के निदेश में एवं 8 समितियाँ सभापति राज्य सभा के निदेश में कार्य करने लगीं। यद्यपि सामान्यतः इन्हें विभागों से संबद्ध स्थायी समिति कहा जाता है पर लोक सभा के नियमों में इन्हें स्थायी समिति ही कहा गया है। इस लेख में आगे हमने इनके केवल समिति नाम का ही प्रयोग किया है।

समिति का गठन : 13वीं लोक सभा तक प्रत्येक समिति में 45 सदस्य होते थे जिनमें से 30 लोक सभा अध्यक्ष द्वारा एवं 15 सभापति, राज्य सभा द्वारा नाम निर्दिष्ट किए जाते थे। जुलाई 2004 में इन समितियों की पुनः संरचना के साथ वे प्रत्येक समिति की सदस्य संख्या घटा कर 31 कर दी गई। इसमें से 21 सदस्य, लोक सभा अध्यक्ष द्वारा एवं 10 राज्य सभा सदस्य उस सदन के सभापति द्वारा नाम निर्दिष्ट किए जाते हैं। समितियों के गठन के समय इस तथ्य का पूरा ध्यान रखा जाता है कि सदनों में विभिन्न राजनैतिक दलों एवं वर्गों के सदस्यों को सदन में उनकी सदस्य संख्या के अनुपात में उचित प्रतिनिधित्व मिल सके। निर्दलीय सदस्यों को भी उचित प्रतिनिधित्व मिलता है। लोक सभा व राज्य सभा के सदस्य 2:1 के अनुपात में नाम निर्दिष्ट किए जाते हैं।

समिति का कार्यकलाप, विचार-विमर्श मंत्री के कारण प्रभावित न हो, एतदर्श किसी भी मंत्री को इन समितियों का सदस्य नियुक्त नहीं किया जाता। यदि समिति का कोई भी सदस्य बाद में मंत्री बन जाता है, वह उस नियुक्ति की तिथि से समिति का सदस्य नहीं रहता।

समिति का सभापति, जो समितियाँ लोक सभा अध्यक्ष के निर्देश में कार्य करती है उनकी सभापति, अध्यक्ष लोक सभा द्वारा समिति सदस्यों के मध्य में किया जाता है। इसी प्रकार जो समितियाँ, सभापति राज्य सभा के निदेश में काम करती हैं उनका राज्य सभा के सभापति द्वारा समिति के सदस्यों के मध्य से की जाती है। सभापति की नियुक्ति करते समय भी विभिन्न दलों/वर्गों का सदन में संख्या को ध्यान में रखा जाता है।

समिति का कार्यकाल : समिति के सदस्यों का कार्यकाल एक वर्ष से अधिक नहीं होता है। किसी रिक्त स्थान की पूर्ति के लिए नाम निर्दिष्ट सदस्य समिति को शेष अवधि के लिए

ही समिति का सदस्य रहता है।

समिति के कृत्य : प्रत्येक समिति के मुख्य कृत्य निम्नानुसार है :

(1) संबंधित मंत्रालयों/विभागों की अनुदान माँगों पर विचार करना और उनके संबंध में दोनों सदनों को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करना, समिति द्वारा अपने प्रतिवेदन में किसी भी प्रकार के कटौती प्रस्ताव का सुझाव नहीं दिया जा सकता।

(2) संबद्ध मंत्रालयों/विभागों से संबंधित ऐसे विधेयकों की जाँच करना जो अध्यक्ष लोक सभा/सभापति राज्य सभा जैसी स्थिति हो, द्वारा उसे सौंपे जाएँ।

(3) संबद्ध मंत्रालयों/विभागों के वार्षिक प्रतिवेदनों पर विचार करना।

(4) ऐसे राष्ट्रीय आधारभूत दीर्घावधि नीति संबंधी दस्तावेज जो सदनों में प्रस्तुत किए गए हों और अध्यक्ष, लोक सभा/सभापति, राज्य सभा द्वारा समिति को सौंपे जाएँ।

समिति इन कृत्यों से संबंधित अपना प्रतिवेदन दोनों सदनों को प्रस्तुत करती है।

समिति अपने कार्यों का निर्वहन करते समय संबंधित मंत्रालय/विभाग के दिन-प्रतिदिन के प्रशासन के मामलों पर विचार नहीं करती। इसके अतिरिक्त, सामान्यतः उन मामलों पर भी विचार नहीं करती जिन पर अन्य संसदीय समितियों द्वारा विचार किया जाता है।

अनुदान माँगों से संबंधित प्रक्रिया : इन समितियों के गठन के बाद से बजट सत्र दो भागों में विभाजित किया जाने लगा है। सभा में बजट पर सामान्य चर्चा हो जाने के बाद सदन एक पूर्व-निर्धारित अवधि के लिए स्थगित हो जाती है। समिति इसी अवधि में अपने अधिकार क्षेत्र में आने वाले मंत्रालय/विभाग की अनुदान माँगों पर चर्चा करती है और अपना प्रतिवेदन दोनों सदनों को प्रस्तुत करती है। समिति इस अवधि को बढ़ाए जाने का अनुरोध नहीं कर सकती। प्रत्येक मंत्रालय/विभाग को अनुदान माँगों पर पृथक-पृथक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जाता है।

जब इस अंतराल के बाद दोनों सदनों की दुबारा बैठकें होती हैं तथा उनके द्वारा समिति के प्रतिवेदन के परिप्रेक्ष्य में संबंधित अनुदान माँगों पर चर्चा की जाती है, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है किस मंत्रालय/विभाग की अनुदान माँगों पर सदन में चर्चा होनी है, यह पूर्व निर्धारित होता है। समिति अपना प्रतिवेदन इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत करती है।

विधेयकों से संबंधित प्रक्रिया : समिति केवल उसी विधेयक पर चर्चा कर सकती है जो लोक सभा अध्यक्ष/सभापति राज्य सभा, यथास्थिति द्वारा उसे जाँच के लिए प्रेषित करे। समिति द्वारा विधेयक के सामान्य सिद्धांतों तथा खंडों पर विचार करने के बाद नियत समय में अपना प्रतिवेदन दोनों सदनों को प्रस्तुत करती है। यद्यपि समिति के प्रतिवेदन आम सहमति पर आधारित होते हैं तथापि समिति का कोई भी सदस्य विमत टिप्पण दे सकता है जो समिति के प्रतिवेदन के साथ दोनों सदनों को प्रस्तुत किया जाता है। वस्तुतः यह विमत टिप्पण प्रतिवेदन का अंग होते हैं।

समिति की बैठकें : समिति की बैठकें सामान्यतः संसद परिसर में ही होती हैं पर यदि आवश्यकता हो तो लोक सभा अध्यक्ष/सभापति राज्य सभा की पूर्वानुमति से अन्यत्र भी कर

सकती है पर यह अपवाद है। समिति विचाराधीन विषय पर जनता व हितग्राहियों के विचार जानने के लिए अध्ययन दौरा भी कर सकती है। समिति विचाराधीन विधेयकों या अन्य विषयों पर आम जनता, गैर-सरकारी संगठनों, विशेषज्ञों, हितधारकों और उनसे जुड़ी संस्थाओं से उनके विचारों/सुझावों को ज्ञापन के रूप में आमंत्रित करती है। लिखित ज्ञापन के अतिरिक्त संबंधित व्यक्ति/संस्था समिति के समक्ष साक्ष्य भी दे सकते हैं।

समिति की सिफारिशें सुविचारित परामर्श के रूप में मानी जाती है और इनका स्वरूप प्रत्ययकारी होता है। आशय यह है कि ये सरकार पर बाध्य नहीं होतीं, यद्यपि सरकार इनकी सिफारिशों पर गंभीरता से विचार करती है और यथासंभव उन पर अमल भी करती है।

सरकार को समिति की सिफारिशों पर की गई कार्यवाई से समिति सचिवालय को निर्धारित समय सीमा में अवगत कराना होता है। समिति इस संबंध में अपना प्रतिवेदन, समय-समय पर दोनों सदनों में प्रस्तुत करती है। इस प्रतिवेदन पर सरकार द्वारा की गई कार्यवाई के संबंध में समिति एक विवरण पुनः दोनों सदनों के सम्मुख प्रस्तुत करती है।

इन समितियों की सिफारिशों के महत्व को इस तथ्य से समझा जा सकता हे कि संबंधित मंत्री समिति की सिफारिशों के अनुसरण में की गई या की जाने वाली कार्यवाई के संबंध में छह माह में एक बार दोनों सदनों में एक वक्तव्य देता है।

संसदीय समितियों पर लागू होने वाले सामान्य नियम इन समितियों पर चर्चा लागू होते हैं। जो समितियों, सभापति, राज्य सभा के निदेशानुसार कार्य करती है, उन पर राज्य सभा प्रक्रिया के प्रवर समितियों पर लागू होने वाले नियम लागू होते हैं। जो समितियाँ लोक सभा अध्यक्ष के निदेश के अनुसरण में कार्य करती हैं उन पर लोक सभा की अन्य समितियों पर लागू होने वाले सामान्य नियम लागू होते हैं। भले ही संसद में विभिन्न मंत्रालयों/विभागों की अनुदान माँगों पर विस्तृत चर्चा न हो पाती हो पर इन समितियों के गठन के बाद से न केवल संसद कार्यपालिका के कार्यकलापों पर बेहतर निगरानी/नियंत्रण करने में समर्थ हुई है वरन् सदस्यों को भी कार्यपालिका की कार्यप्रणाली को नजदीक से देखने और समझने का अवसर मिलता है। साथ ही सरकार को सदस्यों के ज्ञान और अनुभव का लाभ उठाने, उनके माध्यम से धरातल पर वास्तविक स्थिति से जनमानस के विचारों से अवगत होकर मंत्रालय/विभागों के कार्यकलापों और योजनाओं में आवश्यक सुधार करने का अवसर मिलता है।

❑

संदर्भ

1. भारत का संविधान
2. राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन विभाग
3. लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन विभाग
4. संसदीय प्रक्रिया, सारांश माला
5. Practice and Procedure of Parliament by Kaul and Shakdher (7th edition)

डॉ. प्रमोद कुमार अग्रवाल

भारतीय साक्ष्य विधेयक, 2023 : एक समीक्षा

संसार परिवर्तनशील है। विधि में समय के साथ परिवर्तन करना आवश्यक है अन्यथा वह समाज की आशाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं कर सकती जो प्रत्येक विधि का उद्देश्य है। ब्रिटिश काल का सन् 1872 का साक्ष्य अधिनियम यद्यपि भारत में न्यायालयों द्वारा समय के साथ-साथ व्याख्यापित हो रहा था पर उसमें सूचना प्रौद्योगिकी के युग का पूरा बदलाव प्रतिबिम्बित नहीं हो पा रहा था। 9 अगस्त, 2023 को भारतीय साक्ष्य विधेयक संसद में पेश करते हुए गृहमंत्री ने कहा कि प्रस्तुत विधेयक का उद्देश्य और कारण है कि --

1. इलेक्ट्रॉनिक सूचना को साक्ष्य माना जाए।
2. इलेक्ट्रॉनिक या डिजीटल अभिलेख लिखित अभिलेख की भाँति ही स्वीकार्य होगा।
3. इलेक्ट्रॉनिक या डिजीटल माध्यम से प्रतिलिपि द्वितीय (सेकेंडरी) साक्ष्य के रूप में गण्य होगी।
4. साक्ष्य को न्यायालय में स्वीकार करने या प्रमाणित करने की विधि को सुगम बनाना ताकि तथ्यों एवं परिस्थितियों के विषय में सही-सही और समान रूप से न्यायालय प्रक्रिया हो।

इस विधेयक द्वारा प्रस्तावों पर अभी भी जन संवाद चल रहा है। यह विधेयक गृह-मंत्रालय की स्थायी समिति के समक्ष विचाराधीन है तथा इसके उपर जनता के विचार, सुझाव, एवं समीक्षा आमंत्रित की गई हैं।

नए साक्ष्य विधेयक में 23 धाराओं में संशोधन किया गया। एक पूरी तौर से नई धारा जोड़ी गई है तथा 5 धाराएँ हटा दी गई हैं।

सबसे उत्तम हुआ कि अब प्रतिलिपियों के सत्यापन के लिए न्यायालय के सामने अनावश्यक लंबे-लंबे मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं करने होंगे। जो महिलाएँ बलात्कार की शिकार हैं उनके खराब चरित्र का साक्ष्य ग्राह्य नहीं होगा (विधेयक का उपबंध, 48)। यह समस्या गोवा में संपादक तरुण तेजपाल द्वारा बलात्कार के मामले में सामने आई। ट्रेडमार्क, कॉपीराइट जैसे नए क्षेत्रों को भी इस विधेयक में प्रथम बार सम्मिलित किया गया। वेरासिटी अर्थात् सत्यता जैसे उलझे हुए वाक्यांशों को सही तथा विश्वसनीय (एक्यूरेसी एंड केडिबिलिटी) वाक्यांश से विस्थापित किया गया है। मैं नहीं सोचता कि सन् 2000 में जोड़ी इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख संबंधित

धारा 65 बी को हटाने की कोई आवश्यकता थी। हाँ, उसकी संख्या बदलना आवश्यक थी ताकि वह पूर्ण संख्या में आ सके पर इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों के विषय में यह काफी विवरणात्मक धारा थी जबकि नए साक्ष्य अधिनियम विधेयक में प्रावधान संक्षिप्त होने के कारण फिर से विवाद खड़ा कर सकते हैं। इसी प्रकार पुरानी धारा 32 में मृत्यु के समय कथन काफी स्पष्ट था एवं न्यायालय के सैकड़ों निर्णयों ने उसे एक स्पष्ट स्वरूप प्रदान कर दिया था। नए साक्ष्य विधेयक में उसे संक्षिप्त करके उसकी स्थापित चमक को कम कर दिया गया था। डाइंग डिक्लेरेशन के लिए एकमात्र भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872 ही था। पर जहाँ सुधार की आवश्यकता थी, वहाँ सुधार नहीं लाया गया जैसे दहेज के मुकदमों में अभी भी ससुराल पक्ष वालों को ही सिद्ध करना पड़ेगा कि वे दहेज-हत्या में संलिप्त नहीं थे। (उपबंध 118)। कई सर्वेक्षणों में यह सामने आया है कि 90 प्रतिशत दहेज-हत्या या उत्पीड़न के मामले सत्य की तराजू पर खरे नहीं उतरते हैं। आशा है कि इस उपबंध की फिर से समीक्षा की होगी। जब भी साक्ष्य अधिनियम किसी पर साक्ष्य सिद्ध करने का भार डाल देता है, उसका निर्वाह करना अति दुस्साध्य तथा समय-सापेक्ष कार्यवाही होती है क्योंकि भारतीय न्यायशास्त्र के अनुसार चाहे 90 प्रतिशत दोषी छूट जाए, पर एक भी निर्दोष दंडित न होने पाए। आज इसी कारण भारत में दोषसिद्ध दर केवल 24 प्रतिशत है जिस कारण समाज में असुरक्षा, न्याय व्यवस्था के प्रति अविश्वास एवं अश्रद्धा व्याप्त है। न्याय-व्यवस्था में जनता की आस्था ही अच्छे राजतंत्र की कसौटी है। जन-आस्था ही न्याय व्यवस्था का आधार है तथा उसे ठोस स्तंभों पर स्थित करता है। अतः उत्तम होता कि वर्तमान साक्ष्य विधेयक में मैकाले द्वारा दी गई प्रतिपक्षी न्याय प्रणाली से हटकर हम फ्रांस जैसे देशों की जाँच-पड़ताल आधारित (इन्क्यूजिटोरियल) न्याय प्रणाली के कुछ बिन्दु नए विधेयक में सम्मिलित करते तथा अभियुक्त की इच्छा के विरुद्ध जाँच का प्रावधान रखते। यह ठीक है कि आज भी पुलिस के सामने दिए गए साक्ष्य पर लोगों का भरोसा नहीं है। नए साक्ष्य विधेयक में इस जन-भावना को स्थान दिया गया है। पर भ्रष्टाचार के मामलों में सभी अभियुक्तों पर पुलिस-कर्मियों को मिलाकर यदि वे रंगे हाथ रिश्वत लेते पकड़े जाते हैं, या उनका दृश्य (वीडियो) या फोटो साक्ष्य उपलब्ध हैं, साक्ष्य का भार (बर्डन ऑफ प्रूफ) अभियुक्तों पर साक्ष्य अधिनियम के अंतर्गत धारित होना चाहिए। सबसे उत्तम तो यह सुधार हुआ कि भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता विधेयक, 2023 के अंतर्गत अपराध घटित होने के साथ-साथ ही घटना स्थल से खून आदि (विसरा) के प्रमाण या नमूने एकत्रित किए जाएँगे। यदि इसकी प्रशासनिक व्यवस्था हो जाए तो आपराधिक मामलों के निबटान में अभूतपूर्व तेजी आएगी। रूस में ऐसा होता है तथा इस कारण रूस में आपराधिक मामले दो-तीन महीने में निर्णीत हो जाते हैं।

भारतीय साक्ष्य विधेयक, 2023 को भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता विधेयक, 2023 के साथ ही पढ़ना होगा। यह आश्चर्यजनक है कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 2003 के ऑर्डर 17 नियम 1 के द्वारा सन् 2002 में यह क़ानून बना कि मुकदमा में सुनवाई के दौरान एक पक्ष

को तीन से अधिक स्थगन नहीं दिए जा सकते। यह प्रावधान भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 2023 अथवा भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता अधिनियम, 2023 में जुड़ना अत्यावश्यक है। यदि दंडाधिकारी या न्यायाधीश को भी तीन से अधिक बार किसी सुनवाई को अपने व्यक्तिगत या प्रशासनिक कारणों से स्थगन करने का अधिकार नहीं होना चाहिए तथा साक्षियों या गवाहों को भी तीन से अधिक स्थगन नहीं मिलना चाहिए। जो विभाग उनकी उपस्थिति के लिए नियमानुसार भत्ता या खर्च नहीं देते, उन पर विभागीय या व्यक्तिगत जिम्मेदारी अधिनियम के द्वारा आरोपित होना चाहिए। तभी देश में आपराधिक मामलों या मुकदमों के निबटान में त्वरित गति आएगी एवं समाज में शांति-व्यवस्था कायम होगी। इसके साथ-साथ भारतीय साक्ष्य अधिनियम में यह भी आधुनिक परिप्रेक्ष्य में यह व्यवस्था होना चाहिए कि कोई भी न्यायाधीश या दंडाधिकारी जाकर जेल में न्यायालय या अपनी अदालत लगा सकता है। सुनवाई के दौरान अपराधियों को वीडियो वार्ता के माध्यम से न्यायालय के सामने उपस्थित होने की स्वतंत्रता एवं सुविधा होनी चाहिए। यह व्यवस्था व्यक्तिगत या प्रशासनिक कारणों से भी हो सकती है। इस व्यवस्था से माफिया या खतरनाक अभियुक्तों के पलायन की संभावना शून्य हो जाएगी तथा उनको मुकदमों से बोझिल न्यायालयों के सामने उपस्थित करने में पुलिस की भारी-भरकम व्यवस्था एवं वित्तीय भार भी कम हो जाएगा। तभी हम कह सकते हैं कि सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र में भारत केवल विश्व में प्रक्रिया संबंधी या तकनीकी मामलों में ही आगे नहीं है, उसने सूचना प्रौद्योगिकी को अपने व्यक्तिगत, सामाजिक तथा न्यायिक क्षेत्र में भी व्यवहारिक रूप से अपना लिया है। यद्यपि आजकल अभियुक्त नेट से ही वीडियो-कॉनफ्रेंस के द्वारा अदालतों में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं, पर भारत में जब तक कोई व्यवस्था अधिनियम के रूप में समावेशित नहीं होती, वह पूर्ण विस्तार तथा स्थायी स्वरूप नहीं प्राप्त कर पाती। भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 का नामकरण भारतीय आपराधिक न्याय संहिता, 2023 समीचीन होगा। इसमें सम्मिलित भारतीय दंड संहिता में मुख्यतः अपराधों तथा दंडों का प्रावधान है जबकि भारतीय आपराधिक प्रक्रिया संहिता में धारा 144, 107, 110 आदि के द्वारा नागरिक सुरक्षा सुनिश्चित की जाती है। तभी दोनों स्थापित विधियों का नए नाम में समन्वय होगा।

आशा है कि उपर्युक्त सुझावों के साथ-साथ चारों ओर से अनेकों सुझाव हमारे नए भारत साक्ष्य अधिनियम, 2023 को पूर्णतः प्रदान करेंगे। तब हम कह सकेंगे कि नया भारत मैकाले से कई मील आगे है।

❑

डॉ. भगवानदास

राज्यपाल एवं संविधान सभा

राज्यपाल जहाँ एक ओर राज्यों में देश की गणतंत्रीय व्यवस्था का प्रतीक है, वहीं दूसरी ओर वह शासन के संघीय स्वरूप की महत्त्वपूर्ण कड़ी अथवा सेतु भी है। वह राज्यों की संसदीय शासन व्यवस्था में राज्य का प्रमुख है, वहीं राज्यों के शासन संचालन के लिए राष्ट्रपति का नुमाइंदा है। वह राज्य का संवैधानिक प्रमुख एवं संकटकाल में शासन का प्रमुख भी है। अपनी इन्हीं बहुभूमिकाओं की वजह से राज्यपाल का पद संवैधानिक रूप से राष्ट्रपति के बाद दूसरा सबसे महत्त्वपूर्ण एवं गरिमामय पद है।

भारत में गवर्नर अथवा राज्यपाल का पद की शुरूआत ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासनकाल में हुई। उस समय बंगाल, मद्रास एवं बाम्बे में कंपनी की प्रेसीडेंसियाँ थीं। प्रेसीडेंसी में राजकाज व सैन्य मामलों के संचालन हेतु प्रत्येक में गवर्नर हुआ करते थे। गवर्नर पद को राजनीतिक स्वरूप 1773 के रेग्यूलेटिग एक्ट से मिला जब बंगाल के गवर्नर को गवर्नर जनरल एवं फोर्ट विलियम का दर्जा देते हुआ उसे संपूर्ण भारत के कम्पनी क्षेत्र का प्रशासक बना दिया गया तथा मद्रास एवं बाम्बे के गवर्नरों को उसके अधीन कर दिया गया। 1833 के इंडियन चार्टर एक्ट द्वारा गवर्नर जनरल ऑफ फोर्ट विलियम को संपूर्ण भारत का गर्वनर जनरल बनाते हुए उसे संपूर्ण भारत के लिए विधि बनाने, यहाँ के प्रशासन को निर्देशन, निमत्रंण एवं पर्यवेक्षण का अधिकार दिया गया।

1909 के मार्ले मिंटो सुधार के द्वारा भारत में पुनः संघीय व्यवस्था का बीजोरोपण हुआ जिसके अंतर्गत जनरल के साथ साथ प्रांतीय गर्वनरों की विधायी परिषद का विस्तार करते हुए इन प्रांतीय विधायी परिषदों को भी गवर्नर की सहमति से आंशिक विधि निर्माण का अधिकार मिला। भारत शासन अधिनियम, 1919 के द्वारा भारत में स्पष्ट रूप से संघीय व्यवस्था को स्वीकार किया गया। इस एक्ट के अंतर्गत न केवल प्रांतीय गवर्नरों की कार्यपरिषद एवं विधायी परिषद का विस्तार किया गया, बल्कि विधायी परिषद में निर्वाचित सदस्य संख्या का विस्तार करते हुए हस्तांतरित मामलों में उन्हें गवर्नर की सहमति विधि निर्माण का अधिकार मिला। यघपि गवर्नर सार्वजनिक हित में विधि निर्माण रोक सकता था, उस पर वीटो कर सकता था अथवा विधेयक को गर्वनर जनरल की सहमति के लिए आरक्षित कर सकता था। वह हस्तांतरित विषयों का शासन चलाने वाले मंत्रियों को भी उनके पद से हटा सकता था। भारत शासन अधिनियम, 1935 द्वारा प्रांतों में वैध शासन प्रणाली समाप्त कर सभी 59 विषयों में राज्यों को

विधि निर्माण की शक्ति प्रदान करते हुए प्रांतीय गर्वनरों के राज्य अधिकारों यथा मुख्यमंत्री व उसकी सलाह से अन्य मंत्रियों की नियुक्ति, पदच्युति, राज्य विधानमंडल को संबोधन, विधेयकों की विधानमंडल में प्रस्तुति हेतु सहमति व विधानमंडल द्वारा पास विधयकों पर अपनी अनुमति, निषेधाधिकार अथवा गवर्नर जनरल के लिए आरक्षित करना, अध्यादेश जारी करना, सार्वजनिक हित को दृष्टिगत रखते विधि निर्माण को रोकना आदि अधिकारों का विस्तार किया गया।

इस प्रकार भारत शासन अधिनियम, 1936 के अंतर्गत गवर्नरों का पद कही से भी लोकतांत्रिक नहीं कहा जा सकता। स्वतंत्रता के समय गठित संविधान सभा में हमारे संविधान निर्माताओं के समक्ष अनेक विचारणीय मुद्दों मे से एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा यह भी था कि स्वतंत्र भारत में प्रांतों गर्वनर के पद को रखा जाए अथवा नहीं? इस संबध में संविधान सभा के सदस्यों के मध्य जमकर बहस हुई, जहाँ एक ओर कुछ सदस्य गवर्नर जैसे पद को अलोकतांत्रिक मानते हुए इसे समाप्त करने के पक्षधर थे। श्री रोहणी कुमार चौधरी का तर्क था कि ब्रिटिश काल में गर्वनर की नियुक्ति का उद्देश्य साम्राज्यवादी हितों की रक्षा था किंतु स्वतंत्र भारत में केंद्रीय सरकार के हितों की रक्षा के लिए राज्यपाल पद की कतई आवश्यकता नहीं होगी।वहीं दूसरा वर्ग इसे बनाए रखने का पक्षधर था। आइए, हम संविधान सभा के सदस्यों के मध्य हुए इस पद के औचित्य एवं इसे बनाए रखने के तरीकों पर हुई बहस का अवलोकन करते हैं --

30 अप्रैल, 1947 को संविधान सभा की बैठक में पारित प्रस्ताव के अनुसार सरदार बल्लभ भाई पटेल की अध्यक्षता में प्रादेशिक संविधान तैयार करने के लिए एक 21-सदस्यीय Model Provincial Constitution Committee का गठन किया गया। समिति ने अपनी रिपोर्ट में राज्यपाल पद के संबध में निम्नानुसार प्रतिवेदन प्रस्तुत किया --[1]

1. प्रस्तावित प्रादेशिक संविधान सिद्धांत रूप में इंग्लैंड की संसदीय प्रणाली पर आधारित होगा।
2. प्रत्येक प्रदेश के लिए संवैधानिक प्रमुख के रूप में एक राज्यपाल की व्यवस्था होगी तथा वह विधायिका की बैठक आहूत करने तथा इसे भंग करने के लिए अधिकृत होगा।
3. प्रदेश में चुनाव संबंधी व्यवस्थाओं की देख-रेख, निदेशन एवं नियंत्रण की शक्तियाँ राज्यपाल में सन्निहित होंगी। इसके साथ ही समिति ने राज्यपाल को अपने कार्यों तथा दायित्वों का निवर्हन करने के लिए स्वतंत्रता दिए जाने की भी सिफारिश की थी।
4. राज्यपाल अपने प्रदेश में पनप रही किसी भी गंभीर स्थिति के बारे में राष्ट्रपति को सूचित करेगा।

अमेरिका तथा ग्रेट ब्रिटेन में जहाँ क्रमशः विधायी संवैधानिक प्रमुखों के तौर पर निर्वाचित गवर्नर एवं उत्तरदायी मंत्री मंडल की व्यवस्था हैं का विश्लेषण करते हुए भारत में भी राज्यपाल का चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर कराए जाने की सिफारिश की, वहीं दूसरी ओर संविधान मसौदा समिति ने इस सिफारिश को अशंतः स्वीकार करते हुए राज्यपाल की नियुक्ति

प्रकिया के संबध में दो विकल्प रखे प्रथम मतदान द्वारा राज्यपाल का चुनाव। दूसरा नियुक्ति द्वारा मसौदा समिति की इन सिफारिशों के अनुसार प्रथम विकल्प के तहत उस राज्य के ऐसे सभी लोगों जिन्हें संबधित राज्य की विधानसभा में मतदान करने का अधिकार प्राप्त हो द्वारा किया जाएगा। दूसरे, विकल्प के अंतर्गत संबधित राज्य की विधानसभा द्वारा सुझाए गए चार नामों के पैनल में से किसी एक व्यक्ति का राष्ट्रपति के द्वारा अपने हस्ताक्षर एवं मुहर युक्त वारंट के रूप में मनोनयन के रूप में था। इन चार नामों के पैनल का चयन राज्य विधानसभा अथवा विधान परिषद होने की स्थिति में दोनों सदनों के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली से गैर हस्तांतरणीय एकल मतदान पद्धति द्वारा किया जाना था।

उपर्युक्त दोनों विकल्पों पर 30 मई, 1949 को आयोजित संविधान सभा की बैठक में इसके सदस्यों के मध्य जमकर बहस हुई। कई सदस्यों द्वारा प्रथम विकल्प अर्थात् राज्यपाल का चुनाव सीधे वयस्क मताधिकार के आधार पर कराए जाने के विकल्प का समर्थन किया गया। प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना द्वारा इस विकल्प के समर्थन में अपने तर्क देते हुए कहा गया कि ''प्रत्यक्ष चुनाव से राज्य में राज्यपाल पद की गरिमा बढ़ेगी। उनका अभिमत था कि यदि हम अपने संविधान को ब्रिटिश संविधान के अनुरूप बनाना चाहते हैं तो हमें हमारे यहाँ राज्यपाल एवं राष्ट्रपति को वही गरिमा देनी होगी जो इंग्लैड में सम्राट को दी गई है जबकि राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किए जाने पर यह गरिमा राज्यपाल पद की नहीं रहेगी।''[2] दूसरे विकल्प पर चर्चा करते हुए संविधान निर्माता इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ''राज्यपाल को राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किए जाने की स्थिति में ऐसे व्यक्ति की किसी प्रदेश में राज्यपाल के रूप में नियुक्ति से इन्कार नहीं किया जा सकता जिसे उस प्रदेश की भाषा तक का ज्ञान न हो।''[3] उनका तर्क था कि केंद्र एवं राज्य में दो भिन्न दलों की सरकारें होने की स्थिति में राष्ट्रपति द्वारा स्वविवेक का इस्तेमाल किसी एक पद को मजबूत करने के लिए किया जा सकता हैं। संविधान सभा के एक अन्य सदस्य सैयद मोहम्मद सैदुल्ला भी राज्यपाल के जनता के द्वारा प्रत्यक्ष चुनाव के पक्षधर थे।

राज्य विधानमंडल द्वारा सुझाए गए चारों नामों के पैनल में से किसी एक नाम के राष्ट्रपति द्वारा मनोनयन के दूसरे विकल्प के संबध में एच.व्ही.कामथ ने विरोध करते हुए कहा कि ''संबंधित राज्य की विधायिका द्वारा राष्ट्रपति को प्रस्तुत चार नामों के पैनल में से यदि दूसरे, तीसरे एवं चौथे नाम का चयन होता हैं तब राष्ट्रपति द्वारा चयनित व्यक्ति को लेकर विरोध हो सकता हैं परिणामस्वरूप राष्ट्रपति एवं विधायिका के संबधों में खटास आ सकती हैं इससे राष्ट्रपति पद की गरिमा को ठेस पहुँचेगी।''[4]

इस तरह से हम देखते हैं कि राज्यपाल के चयन के उपर्युक्त दोनों विकल्पों का संविधान सभा के कुछ सदस्यों का विरोध था अतः अधिकांश सदस्यों ने तीसरे विकल्प राज्यपाल की राष्ट्रपति द्वारा नियुक्ति पर विचार किया। इस विकल्प का समर्थन करते हुए अल्लादि कृष्णा स्वामी अय्यर ने कहा था कि ''संविधान सभा ने विभिन्न राज्यों में उत्तरदायी सरकार बनाने

की बात इस रूप से स्वीकार की हैं कि राज्यपाल संबधित राज्य का मात्र संवैधानिक प्रमुख होना चाहिए, जबकि वास्तविक कार्यकारी अधिकार राज्यों के मंत्रिमंडल में निहित होंगे, जो संबद्ध प्रदेश के निम्न सदन के प्रति उत्तरादायी होगा। जनता के द्वारा राज्यपाल के चुनाव की स्थिति में राज्यपाल तथा संबंधित राज्य की विधायिका के प्रति जबाबदेह मुख्यमंत्री व उसके मंत्रिमंडल, जो स्वंय आम चुनाव द्वारा निर्वाचित होते हैं के मध्य टकराव होने की आंशका बनी रहेगी।''[5] श्री अय्यर साहब ने अपने तर्क को आगे बढाते हुए कहा कि ''राज्यपाल को यदा कदा अपनी असाधारण शक्तियों का प्रयोग करना पड़ सकता है। इस स्थिति में चुनाव की अपेक्षा मनोनयन उसके लिए अपेक्षाकृत अधिक अनुकूल स्थिति होगी। राष्ट्रपति द्वारा प्रांतीय मंत्रिमंडल की सहमति से नियुक्त राज्यपाल पद पर आसीन व्यक्ति जनता के द्वारा निर्वाचित व्यक्ति से कही अधिक सावधान व सतर्क रहेगा।''[6]

श्री के.एम. मुंसी ने भी राज्यपाल की राष्ट्रपति के द्वारा नियुक्ति के विकल्प का समर्थन करते हुए कहा कि ''चुनावों के माध्यम से राज्यपाल पद के लिए निर्वाचित व्यक्ति अपने आप को दलगत राजनीति से बाहर नहीं रख सकेगा।''[7]

राजस्थान के पूर्व अध्यक्ष श्री हरिशंकर भामड़ा के अनुसार श्री जवाहर लाल नेहरू का भी उपर्युक्त दृष्टिकोणों के समर्थन में अपना मत था कि ''राज्यपाल पद का चुनाव होने की स्थिति में अल्पसंख्यक वर्ग के नेताओं को अलग रखा जा सकता हैं किन्तु यदि राष्ट्रपति द्वारा राज्यपालों की नियुक्ति की दशा में इस वर्ग से भी राज्यपाल पदों पर नियुक्त किए जा सकेंगें।''[8]

संविधान सभा के अन्य सदस्य श्री ब्रजेश प्रसाद का सुझाव था कि ''राज्यपाल अपने गृह राज्य से बाहर का होना चाहिए ताकि स्थानीय राजनीति में उसका हस्तक्षेप न रहे।''[9] इसके विपरीत, श्री रोहणी चौधरी का मत था कि ''राज्यपाल संबद्ध राज्य का होना चाहिए ऐसा होने पर वह राज्य के स्थानीय लोगों की समस्याओं की जानकारी रहने पर उनका समाधान करने में समर्थ हो सकेगा।''[10] उपर्युक्त वाद-विवाद एवं गहन विचार विमर्श के पश्चात संविधान सभा में राज्यपाल को राष्ट्रपति द्वारा नियुक्ति के विकल्प पर सहमति बन सकी। हाँ, राज्यपाल संबधित राज्य का होना चाहिए अथवा नहीं ? उसी प्रकार उसकी नियुक्ति के संबध में संबधित राज्य के मुख्यमंत्री एवं उसके मंत्रिमंडल से परामर्श किया जाना चाहिए अथवा नहीं ? संविधान के अनुच्छेदों में इन दोनों प्रावधानों का कोई उपबंध नहीं किया गया हैं। हाँ, यह एक स्वस्थ्य परंपरा हैं कि साधारणतः राज्यपाल की नियुक्ति उससे संबंधित राज्य में नहीं की जाती। इसी प्रकार उसकी नियुक्ति में राज्य के मुख्यमंत्री व उसके मंत्रिमंडल से सलाह की कोई परम्परा एक दो अपवादों को छोड़कर विकसित नहीं हुई है।

राज्यपाल का कार्यकाल : संविधान के मसौदे में राज्यपाल की कार्यविधि 4 वर्ष सुझाई गई थी लेकिन संविधान निर्माता डॉ. अंबेडकर राज्यपाल का कार्यकाल की निश्चित अवधि निर्धारित किए जाने के पक्ष में नहीं थे, उनका मानना था कि ''राज्यपाल पद धारण करने वाले व्यक्ति को तभी तक अपने पद पर रहना चाहिए, जब तक राष्ट्रपति चाहे अर्थात् उसके प्रसाद

पर्यंत तक''[11] उनके मतानुसार राज्यपाल पद को धारित करने वाला व्यक्ति अपनी इच्छानुसार जब तक चाहे तब राष्ट्रपति को लिखित त्यागपत्र देकर अपना पद त्याग सकता हैं। प्रो. के. टी. शाह इस मत के विरूद्ध थे उनका विचार था कि राज्यपाल को राष्ट्रपति की दया पर नही छोडा जाना चाहिए, अर्थात् अपने कार्यकाल के दौरान उन्हे अपने पद से नही हटाया जाना चाहिए प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना का भी अभिमत था कि राज्यपाल पद स्वतंत्रता को अक्षुण रखा जाना चाहिए। अंततः संविधान सभा ने राज्यपाल के कार्यकाल की अवधि 5 वर्ष अथवा राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यन्त तक दोनों बातों का समावेश करते हुए कार्यकाल निर्धारित किया अर्थात् 5 वर्ष के पूर्व भी राष्ट्रपति के द्वारा उसे हटाया जा सकता था। वह स्वयं भी अपने कार्यकाल समाप्ति के पूर्व अपना त्यागपत्र राष्ट्रपति को भेजकर अपना पद त्याग सकता है।

राज्यपाल के अधिकार- ''राज्य की समस्त कार्यपालिक शक्तियाँ राज्यपाल में निहित होगीं। इस प्रस्ताव पर प्रो. के.टी.शाह के आग्रह पर 'इन' के स्थान पर 'शैल' शब्द जोड़ा गया।''[12] इसी प्रकार, राज्यपाल के मुख्यमंत्रियों व अन्य मंत्रियों की नियुक्ति के अधिकार पर बहस हुई। राज्यपाल के द्वारा नियुक्त मंत्री उसके चाहने तक ही अपने पद बने रहेंगे, पर अपना संशोधन पेश करते हुए डॉ. अंबेडकर ने कहा कि ''मुख्यमंत्री की नियुक्ति स्वंय राज्यपाल के द्वारा की जाएगी तथा अन्य मंत्रियों की नियुक्ति मुख्यमंत्री की सलाह से ही राज्यपाल करेगा तथा मंत्रीगण गवर्नर के चाहने तक ही अपने पद बने रहेगें।''[13] गर्वनर के चाहने तक शब्द पर कई सदस्यों ने विरोध करते हुए कहा कि मंत्रियों को जब तक नहीं हटाया जाना चाहिए तब तक उन्हें राज्य विधानसभा का बहुमत प्राप्त हैं। डॉ. अंबेडकर ने इसका उत्तर देते हुए स्पष्ट किया कि ''राज्यपाल के चाहने तक से उनका आशय मंत्रियों को विधानसभा में बहुमत प्राप्त होने तक से ही था।''[14]

राज्यपाल के सभी कार्यपालिक आदेश राज्यपाल के नाम से जारी किए जाएँगे। इस पर प्रो. के.टी. शाह ने अपना मत दिया कि राज्यपाल के स्थान पर संबधित राज्य सरकार शब्द जोडा जाना चाहिए। अपने इस मत के पीछे उनका तर्क था कि राज्यपाल जो स्वयं राज्य का अस्थायी प्रमुख है, में इतनी व्यापक शक्तियों को निहित किया जाना अनुचित होगा। डॉ. अंबेडकर इस विरोध का उत्तर देने खड़े हुए, उनका मत था कि ''ब्रिटिशकाल कार्यपालिका के सभी कार्य भारत सरकार के नाम से किए जाते थे जबकि वे निर्णय गवर्नर जनरल की काउन्सिल में लिए जाते थे।''[15] पी.एस. देशमुख ने इस मत का समर्थन करते हुए कहा कि चूंकि राज्य सरकारों का हर आदेश राज्यपाल के नाम से जारी किया जाएगा अतः ऐसे हर आदेश से राज्यपाल को अवगत कराया जाना चाहिए। रोहिणी कुमार चौधरी ने भी इसी मत का समर्थन किया कि ''राज्य प्रशासन से संबधित सभी रचनाएँ जो राज्यपाल की शक्तियों एवं स्वविवेक पर आधारित निर्णय से हों, उनके संबध में आवश्यक रूप से राज्यपाल को अवगत कराया जाना चाहिए।''[16]

राज्यपाल की विधायी शक्तियाँ : संविधान के मसौदे अनुच्छेद 153 में कहा गया था कि राज्यपाल जैसा चाहे उचित समझें उस समय और स्थान पर सदन की बैठक आहूत कर

सकता है तथा इसे भंग कर सकता है। इस संबध में मुहम्मद ताहिर ने संशोधन पेश करते हुए कहा कि मूल धारा में इस प्रकार का प्रावधान जोड़ा जाना चाहिये, जिससे राज्यपाल विधायिका को केवल उसी स्थिति में भंग कर सके जब वह संतुष्ट हो कि राज्य का प्रशासन सर्वथा असफल हो गया हैं तथा समूचा राज्य अस्थिर एवं डावाडोल की स्थिति में आ गया हैं। मोहम्मद ताहिर ने अपनी बात को आगे बढाते हुए कहा कि ''मात्र इस तथ्य से कि उसके व मंत्रिमंडल के मध्य किन्ही मुद्दों पर असहमति बन गई है, उसे सदन को भंग करने का अधिकार नहीं दिया जाना चाहिए।''[17]

आपातकालीन शक्तियाँ : राज्यपाल को प्रदत्त आपातकालीन शक्तियाँ विशेष रूप से राज्य में संवैधानिक मशीनरी फेल हो जाने से संबध प्रावधानों पर संविधान सभा में अच्छी खासी बहस हुई। संविधान के अनुच्छेद 278 में मसौदा तैयार करते समय यह उपबंध किया गया था कि ''किसी राज्य में संवैधानिक मशीनरी फेल हो जाने पर राज्य में राज्यपाल स्वयं एक पखवाडे के लिए राज्य का प्रशासन चलाने की शक्तियाँ का प्रयोग कर सकेगा तथा इसकी सूचना राष्ट्रपति को कर देगा।''[18] ''इस धारा के विरोध में ऐसी मानक व्यवस्था होनी चाहिए जिसके आधार पर राज्य विशेष में संवैधानिक मशीनरी फेल होने की बात सुनिश्चित की जा सके।''[19] आगे डॉ. अंबेडकर ने राज्यपाल के आपातकालीन अधिकारों के बारे में अनुच्छेद 278 के बारे में एक नया संशोधन पेश किया। इस संशोधन के अनुसार ''यदि राष्ट्रपति किसी राज्य के राज्यपाल अथवा शासक अथवा किसी अन्य सूत्र से प्राप्त जानकारी से संतुष्ट हो कि उस राज्य विशेष में संविधान की व्यवस्थाओं के अनुरूप शासन चलाना असंभव हो गया है, तब वह अपने द्वारा जारी उद्घोषणा के जरिए राज्य विशेष की सरकार की समस्त कृत्यों का सपांदित करने में तथा राज्यपाल में निहित शक्तियों को वह स्वंय ग्रहण कर सकता है। वह यह भी घोषित कर सकता हैं कि राज्य की विधायिका द्वारा प्रदत्त शक्तियाँ संसद के अधिकार क्षेत्र में आएँगी।[20]

उर्पयुक्त संशोधन के संबध में एच.व्ही. कामत का मत था कि संशोधन में प्रयुक्त शब्द अथवा अन्य प्रकार से के पीछे बदनीयत एवं धूर्तता झलकती है। अतः इसे निरस्त किया जाना चाहिए उनका तर्क था कि ''राज्यपाल राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत होने के कारण उसका विश्वास पात्र व्यक्ति होगा। उनका यह भी तर्क था कि यदि राष्ट्रपति को राज्यपाल की रिपोर्ट बगैर उन्य स्त्रोत से प्राप्त जानकारी के आधार पर कार्यवाही करने की छूट दी गई तो इससे प्रादेशिक स्वायत्ता का मूल आधार ही नष्ट हो जाएगा।''[21] आगे अपनी बात को स्पष्ट करते हुए कामथ साहब ने कहा कि ''मैं चाहता हूँ कि राष्ट्रपति को इस मामलों में कार्यवाही तभी करने के लिए अधिकृत किया जाना चाहिए, जब वह राज्यपाल अथवा उस राज्य का शासक उसे इस प्रकार की स्थिति के बारे में सूचित करे अन्यथा नहीं, अर्थात् राष्ट्रपति द्वारा राज्य विधानसभा भंग करने सरकारों को बर्खास्त करने की कार्यवाही के पीछे राज्यपालों से प्राप्त प्रतिवेदन एक बुनियाद आवश्यकता होनी चाहिए।''[22]

प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना ने भी संशोधन का विरोध करते हुए कहा कि ''हमने राष्ट्रपति

द्वारा किसी राज्य के मामले के हस्तक्षेप करने का कम से कम तब तक कोई औचित्य नहीं है जब तक कि उसे स्वंय के द्वारा मनोनीत राज्यपाल से रिपोर्ट न मिल जाए।''[23] लेकिन राज्यों के मामलों में इस हस्तक्षेप के अधिकार के रूप में स्वयं उसे अपने विवेक से विरत रहना पड़ेगा भले ही प्रादेशिक मंत्री परिषद उससे असहमत हो। प्रो. सक्सेना का मत था कि ''राष्ट्रपति राज्यों के मामलों में अपने इस अधिकार का दुरूपयोग भी कर सकता है, उदाहरण के बतौर केंद्रीय गुप्तचर विभाग से उसे इस आशय की रिपोर्ट प्राप्त होने पर कि किसी राज्य विशेष में क़ानून व्यवस्था की स्थिति भंग हो गई है या कोई गंभीर स्थिति निर्मित हो गई है, तब तो उस स्थिति में राष्ट्रपति उस प्रदेश के शासन करने के समस्त अधिकार अपने हाथ में ले सकता है।''[24]

पी.एस. देशमुख ने भी संशोधन की आलोचना करते हुए कहा कि ''हमने राष्ट्रपति या संसद में सभी प्रकार के आपातकालीन अधिकार दिए हैं और गवर्नर महज एक रिपोर्ट देने वाला अधिकारी बन कर रह गया है।[25] उनके मतानुसार प्रथमतः यह संघीय प्रणाली की अवधारणा के विपरीत है। द्वितीय, इस प्रकार की कार्यवाही से संसद के पास ऐसा अतिरिक्त कार्यभार एवं दायित्व का बोझ आएगा जो स्वाभाविक रूप से किसी राज्य की विधायिका के सुपुर्द होंगे। श्री देशमुख ने किसी राज्य विशेष में क़ानून व्यवस्था अथवा संवैधानिक मशीनरी फेल होने की स्थिति में संबंधित राज्य के राज्यपाल द्वारा वहाँ का शासन एक पखवाडे के लिए अपने हाथ में लिए जाने का समर्थन करते हुए कहा कि इससे उसे स्थिति को सुधारने का अपेक्षित अवसर मिल सकेगा, क्योंकि राष्ट्रपति अथवा संसद की तुलना में उसे राज्य के हालत की बेहतर जानकारी होगी। श्री नशरुद्दीन अहमद का मत था कि ''इस तरह के प्रावधान से छोटे से बहानों द्वारा राज्यों के मामलों में केंद्र को हस्तक्षेप करने की सुविधा मिल जाएगी।''[26]

श्री अलगूराम शास्त्री का मत था कि इस अनुच्छेद के प्रावधान के संबंध में भारत शासन अधिनियम, 1935 के अनुकरण की आवश्यकता नहीं है, उनका मत था कि किसी राज्य में संकटकाल की स्थिति में मौके पर उपस्थित व्यक्ति अर्थात् राज्यपाल पर विश्वास किया जाना चाहिए अन्यथा फिर उसे गर्वनर कहने की अपेक्षा गोबर जार कहना कहीं अधिक उपयुक्त होगा।[27]

दूसरी ओर संशोधन के समर्थन में खड़े हुए ठाकुरदास भार्गव उन्होनें अनुच्छेद में अन्य प्रकार से शब्द को बनाए रखने का समर्थन करते हुए तर्क दिया कि उस स्थिति में जब राज्यपाल एवं मंत्री परिषद के मध्य टकराव की स्थिति निर्मित हो जाए तथा राज्य विधानसभा इस आशय का प्रस्ताव पास करती है कि प्रदेश में गिरती हुई क़ानून व्यवस्था को देखते हुए केंद्र द्वारा हस्तक्षेप करना आवश्यक हो गया है, इस स्थिति से निपटने के लिए अन्य प्रकार से शब्द जोड़ा जाना आवश्यक है।[28] अन्य सदस्य श्री राजबहादुर ने भी डॉ. अंबेडकर द्वारा प्रस्तुत संशोधन का समर्थन किया।

डॉ. अंबेडकर ने सदस्यों द्वारा उठाए गए उपर्युक्त मुद्दों का जबाब देते हुए कहा कि इस अनुच्छेद का अंतिम उपाय के रूप में ही प्रयोग किया जाना चाहिए, उन्होनें अपने मत को आगे व्यक्त करते हुए कहा कि ''किसी भी राज्य की विधानसभा को भंग करने से पूर्व राष्ट्रपति

द्वारा संबंधित राज्य के मंत्रिमंडल को उसकी त्रुटियों के लिए चेतावनी दी जानी चाहिए। यदि इस चेतावनी का कोई प्रभाव न हो तो उस अवस्था में वह राज्य में नए चुनाव कराने का आदेश दे सकता है। इन दो उपायों के असफल हो जाने पर ही उसे इस अनुच्छेद का प्रयोग करना उचित होगा।[29] इस तरह लम्बी बहस के पश्चात ही मसविदे के अनुच्छेद 278 को संविधान सभा द्वारा स्वीकार किया गया।

निष्कर्ष : इस प्रकार हम सकते हैं कि ब्रिटिश साम्राज्य के दौरान ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा निर्मित इस पद को न केवल 1909 मारले मिंटो एक्ट में बनाए रखा गया बल्कि भारत सरकार अधिनियम 1909 एवं 1935 में भी इस पद को अधिक अधिकारों से संपन्न कर शक्तिशाली बनाया गया।

स्वतंत्रता के पश्चात् इस पद को हमने केवल ब्रिटिश राजनैतिक विरासत के प्रतीक के रूप में स्वीकार नहीं किया, बल्कि इस पद के प्रत्येक पहलू पर हमारे संविधान निर्माताओं के मध्य गहन विचार-विमर्श हुआ, विस्तृत मंत्रणा हुई तथा सार्थक बहस के पश्चात् ही इस पद को संयुक्त राज्य अमेरिका के गवर्नर की भाँति नहीं बल्कि हमारी स्थानीय राजनैतिक परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित स्वरूप में स्वीकार किया गया। आज राज्यपाल का पद जहाँ एक ओर राज्यों की गणतंत्रीय व्यवस्था का प्रतीक है वहीं केंद्र एवं राज्यों के मध्य वह एक संवैधानिक सेतु है तथा राज्यों को संवैधानिक मशीनरी के फेल होने अथवा संवैधानिक संकट के समय प्रशासक तथा राष्ट्रपति का संवैधानिक अभिकर्ता है। संवैधानिक रूप से उसका पद दलगत राजनीति से ऊपर, राज्यों का संवैधानिक प्रमुख एवं संसदीय शासन प्रणाली का यह पद सशक्त हस्ताक्षर है।

❑

संदर्भ

1. विधायनी अप्रैल-जून 1993, पृष्ठ 4, मध्य प्रदेश विधानसभा सचिवालय, भोपाल।

2-3. संविधान सभा की बहसें भाग 02 वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग भारत सरकार नई दिल्ली। वही

4. विधायनी, अप्रैल-जून 1993, पृष्ठ 4, मध्य प्रदेश विधान सभा सचिवालय, भोपाल।

5-7. संविधान सभा की बहसें भाग-2, वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग भारत सरकार नई दिल्ली। वही, वही

8. माननीय हरिशंकर भाभड़ा, अप्रैल-जून 1993, पृ. 06 राज्य विधान सभा सचिवालय भोपाल।

9-10. संविधान सभा की बहसें भाग-2, वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग भारत सरकार नई दिल्ली। 27 वही।

सन्तोष खन्ना

महिला गरिमा का गौरव : समान नागरिक संहिता

समान नागरिक संहिता के अंतर्गत भारत में रहने वाले सभी नागरिकों के लिए एक समान क़ानून बनाने का प्रस्ताव है। यह क़ानून सभी नागरिकों पर समान रूप से लागू होगा चाहे वह नागरिक किसी भी धर्म या जाति का हो। समान नागरिक संहिता के अंतर्गत विवाह, तलाक, गोद लेने और ज़मीन-जायदाद के बंटवारे में सभी धर्मों के लोगों पर एक समान क़ानून लागू होगा। दूसरे शब्दों में, अलग-अलग नागरिकों के लिए अलग-अलग नागरिक क़ानून ना होना ही समान नागरिक संहिता की मूल भावना है। कुल मिलाकर कह सकते हैं यह समान नागरिक संहिता क़ानून एक धर्म निरपेक्ष क़ानून होगा। भारत के संविधान की उद्देशिका में धर्म निरपेक्षता एक प्रमुख कारक है और समानता एक प्रमुख मौलिक अधिकार है। अतः सभी नागरिकों के लिए धर्म निरपेक्षता और समानता की भावना को सही और सुदृढ़ रूप से प्राप्त करने के लिए, देर से ही सही, एक समान नागरिक संहिता क़ानून लाया जाना अत्यावश्यक है।

भारत के विधि आयोग ने 15 जून, 2023 को देश में समान नागरिक संहिता के विषय पर नए सिरे से आम जनता के विचार आमंत्रित करने की प्रक्रिया आरंभ कर दी है। जनता और धार्मिक संस्थाओं को इस पर 30 दिन के भीतर अपनी राय देनी होगी। कर्नाटक उच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति ऋतु राय अवस्थी की अध्यक्षता में कार्यरत वर्तमान विधि आयोग ने समान नागरिक संहिता पर आम जनता की राय पहली बार नहीं माँगी है इससे पहले 21वें विधि आयोग ने 7 अक्टूबर, 2016 को भी ऐसी ही राय की माँग की थी। 19 मार्च, 2018 और 23 मार्च, 2018 को भी ऐसी ही राय माँगी गई थी। इसके बाद उसने अपनी सिफारिश में कहा था कि समान नागरिक संहिता पर क़ानून बनाने का अभी उपयुक्त समय नहीं आया है। अब तक उस समय की माँगी गई राय को 5 वर्ष की अवधि हो चुकी है। समान नागरिक क़ानून बनाने के लिए अब नए सिरे से जनता की राय माँगी गई है। इस संबंध में 13 जुलाई, 2023 तक राय भेजी जा सकती है।

समान नागरिक संहिता क़ानून बनाने के लिए देश की सर्वोच्च न्याय संस्था उच्चतम न्यायालय कई बार भारत सरकार से इसके बारे में निर्देश दे चुका है। इस क़ानून को बनाने से पहले यह उचित समझा गया है कि इस विषय पर जनता की अद्यतन राय ले ली जाए। वास्तव में भारत के संविधान के अध्याय 4 में दिए गए राज्य के नीति निदेशक तत्वों के

अनुच्छेद 44 में कहा गया है कि ''राज्य भारत के पूरे क्षेत्र में नागरिकों के लिए एक समान नागरिक संहिता सुरक्षित करने का प्रयास करेगा।'' चाहे संविधान निर्माताओं ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 44 में समान नागरिक संहिता क़ानून लागू करने का प्रावधान कर दिया था किंतु संविधान को लागू हुए 75 वर्ष बीत जाने के बावजूद भारत में अभी तक समान नागरिक संहिता लागू नहीं हो सकी है। भारत में अधिकतर व्यक्तिक क़ानून धर्म के आधार पर तय किए गए हैं। भारत की स्वतंत्रता के बाद संविधान लागू होने के छठे दशक में हिंदुओं के लिए संविधान के अंतर्गत व्यक्तिक क़ानून बना दिए गए परंतु मुसलमानों और ईसाईयों के अभी भी धर्म पर आधारित व्यक्तिक क़ानून बने हुए हैं। मुसलमानों के व्यक्तिक क़ानून शरीयत पर आधारित हैं। अधिकांश धार्मिक समुदाय के क़ानून भारत के संविधान के अधीन बनाए जा चुके हैं। यह भी सच है कि जब भारत के संविधान के अधीन संसद में हिंदू विवाह अधिनियम और दूसरे पारिवारिक क़ानून बने तो कुछ तत्कालीन हिंदू तत्वों ने इन क़ानूनों का खुलकर विरोध किया था। फिर भी तत्कालीन संसद ने हिंदुओं के घोर विरोध के बावजूद उस समय के पारिवारिक मसलों को लेकर क़ानून पारित किए। उस समय हिंदुओं के विरोध को तो संसद झेल गई, किंतु मुसलमानों के शरीयत क़ानून में बदलाव के विरोध को संसद नहीं झेल पाई और मजबूरन इस बारे में राज्य के नीति निदेशक तत्वों के अंतर्गत अनुच्छेद 44 में प्रावधान करना पड़ा। शायद उस समय संविधान निर्माता सोच रहे होंगे कि बाद में जब स्थितियां अनुकूल हो जाएँगी तो समान नागरिक संहिता लागू कर दी जाएगी। परंतु अब तक का इतिहास गवाह है कि इस संबंध में कभी भी स्थिति अनुकूल नहीं हुई बल्कि जटिल से जटिल और अधिक जिद्दी होती गई है।

समय के इस मुहाने पर खड़े होकर कह सकते हैं उस समय यह समान नागरिक संहिता लाना अपेक्षाकृत सुगम था। उस समय देश का बंटवारा हो चुका था और जो मुस्लिम लोग पाकिस्तान में जाना चाहते थे जा चुके थे। उस समय भारत में शेष मुस्लिम लोगों को समझाना सुगम था अथवा उनके विरोध के बावजूद समान नागरिक क़ानून बनाना सुगम था। उस समय समान नागरिक संहिता ना बनाकर बहुत बड़ी भूल कर दी गई और उस कारण से अब तक भारत की लाखों-करोड़ों मुस्लिम महिलाओं को संविधान प्रदत्त समानता के अधिकार से वंचित रखा जाना बहुत बड़ी भूल थी जिसके कारण उन्हें अब तक अन्याय का सामना करना पड़ रहा है। धर्म के नाम पर उनके साथ हो रहे अधर्म और सामाजिक अन्याय के लिए कौन जिम्मेदार है? इस समान नागरिक संहिता का विरोध करने वाले तत्व अब चिल्ला-चिल्ला कर कह रहे हैं कि वे भारत के संविधान को मानते हैं परंतु वह वही तक संविधान को मानते हैं जहाँ तक उनको फायदा होता है। जहाँ उनके दायित्व की बात होती है वहाँ वह चिल्ला-चिल्ला कर संविधान प्रदत अधिकारों की दुहाई देने लगते हैं और इस बात की उन्हें रत्ती भर भी परवाह नहीं कि इससे मुस्लिम महिलाएँ कितने बड़े अन्याय का शिकार होती आ रही हैं।

कुछ वर्ष पहले जब सरकार ने तीन तलाक पर क़ानून बना कर पाबंदी लगाई थी तब भी

मुस्लिम लोगों और निहित स्वार्थों ने इस का घोर विरोध किया था परंतु राजनीतिक मजबूत इच्छा-शक्ति के सामने किसी की एक नहीं चली और किसी सीमा तक हमारी मुस्लिम बहनों की तलाक की नापाक शक्तियों से चली आ रही इस घोर अन्यायपूर्ण प्रथा से मुक्ति मिल गई है।

वास्तव में एक मुस्लिम महिला शायरा बानो ने उच्चतम न्यायालय में एक याचिका दायर की कि मुस्लिम क़ानून के अंतर्गत आने वाली तीन प्रथाएँ तलाक-ए-बिद्दत, बहु-विवाह और निकाह-हलाला असंवैधानिक है क्योंकि वह भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 21 और 25 में दिए गए महिलाओं के मूल अधिकारों का उल्लंघन है इसलिए इन प्रथाओं से मुस्लिम महिलाओं को मुक्ति दिलाई जाए। वर्ष 2017 में सायरा बानो के इस केस पर फ़ैसला सुनाते हुए उच्चतम न्यायालय ने तीन तलाक को गैर-क़ानूनी घोषित कर संसद को इस संबंध में छः महीने के भीतर क़ानून बनाने को कहा था। उच्चतम न्यायालय की पाँच-सदस्यीय संविधानिक पीठ में से 3-2 से फ़ैसला सुनाया गया था। दो न्यायाधीशों ने तीन तलाक को असंवैधानिक क़रार दिया तो एक न्यायधीश महोदय ने इसे पाप कहा था। संसद में तीन तलाक संबंधी विधेयक बिल दो बार प्रस्तुत हुआ परंतु राज्य सभा में यह आरंभ में पारित नहीं हो सका था। इसके बाद, सरकार ने एक अध्यादेश लाकर इसे लागू किया जिसे संसद में छः महीने के अंदर पारित करना था। बाद में वह विरोध, बहस और वक्आउट के बाद राज्य सभा ने भी इसे पारित कर दिया जिसके बाद लाखों मुस्लिम महिलाओं को सदियों से चले आ रहे तीन तलाक की अन्यायपूर्ण प्रथा से मुक्ति मिली परंतु समान नागरिक संहिता क़ानून न बन पाने के कारण अभी भी मुस्लिम महिलाओं के विरुद्ध अन्याय का सिलसिला समाप्त नहीं हुआ है।

समान नागरिक संहिता का प्रश्न कोई अचानक पैदा नहीं हुआ है। यह मुद्दा भारत की स्वाधीनता प्राप्ति से भी पहले का है। कह सकते हैं कि यह मुद्दा औपनिवेशिक भारत में तब पैदा हुआ जब अंग्रेज सरकार ने 1835 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी। किंतु बाद में अंग्रेजों ने मुस्लिमों से बैर मोल न लेने के लिए इस मुद्दे को छोड़ दिया। औपनिवेशिक काल में अंग्रेजों ने धर्म के आधार पर मुस्लिम, ईसाई और पारसी लोगों के लिए अलग-अलग क़ानून बनाए। भारत में सभी मुसलमानों पर मुस्लिम पर्सनल लॉ शरीयत (एप्लिकेशन) एक्ट, 1939 लागू है इसके अंतर्गत विवाह, उत्तराधिकार, विरासत और दान संबंधी विषय आते हैं। इसके अलावा, मुस्लिम विवाह विच्छेद अधिनियम, 1939 भी है जो मुस्लिम महिलाओं के संबंध में है। यह क़ानून भारत के स्वतंत्र होने से पहले बनाए गए थे जो अब तक चले आ रहे हैं।

स्वाधीनता संग्राम के दौरान नेहरू जी भी समान नागरिक संहिता के समर्थक थे। कांग्रेस के इतिहास से गुजरते हुए पता चलता है कि वर्ष 1930 में श्री जवाहरलाल नेहरू ने समान नागरिक संहिता का समर्थन किया था परंतु उस समय तत्कालीन वरिष्ठ नेताओं ने उनका जम कर विरोध किया था। बाद में स्वतंत्रता मिलने से पहले जब संविधान का निर्माण किया जा रहा था तो भी भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू, उनके समर्थक और महिला सदस्य समान नागरिक संहिता लागू करना चाहते थे। इस संबंध में तत्कालीन क़ानून मंत्री श्री बी.

आर. अंबेडकर इस विधेयक को प्रस्तुत करने के प्रभारी मंत्री थे। उस समय नेहरू यह मानते थे एक समान नागरिक संहिता पूरे भारत के लिए जरूरी है। उस समय विवादों के कारण वह रुढ़िवादी तत्वों को इस बारे में राजी नहीं कर सके इसलिए उस समय समान नागरिक संहिता को लागू नहीं किया जा सका। परिणामस्वरूप, इसके लिए ही अनुच्छेद 44 में इसके बारे में प्रावधान किया गया था।

भारत के स्वतंत्र हो जाने के बाद जब 26 जनवरी, 1950 को स्वतंत्र भारत का संविधान लागू कर दिया गया तो उसी छठे दशक में हिंदुओं की व्यक्तिक विधियों में परिवर्तन कर नए क़ानून बना दिए गए। इनमें से पहला क़ानून था हिंदू विवाह अधिनियम, 1955। इसके अंतर्गत अन्य प्रावधानों के साथ बहु-विवाह पर रोक लगा दी गई। हिंदुओं के लिए बहु-विवाह को अपराध बना दिया गया परंतु मुसलमानों को चार विवाह का प्रावधान अब भी कायम है।

हिंदुओं के लिए उस समय संहिताबद्ध किए गए चार क़ानून निम्नलिखित हैं :--

1. हिंदू विवाह अधिनियम, 1955
2. हिंदू दत्तक ग्रहण एवं भरण पोषण अधिनियम, 1956
3. हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956
4. हिंदू अवयस्कता एवं संरक्षत्व अधिनियम, 1956

इन उपरोक्त क़ानूनों में समय समय पर जरूरी संशोधन भी किए जाते रहे हैं और आगे भी किए जाते रहेंगे। ऐसा नहीं है कि इन 75 वर्षों में मुस्लिम समाज में व्यक्तिक क़ानूनों को लेकर शिकायतें न आई हों अथवा उनमें इन्हें ले कर असंतोष ना पैदा हुआ हो। इस संबंध में वर्ष 1985 में एक बहु-चर्चित मामला शाहबानो का रहा है।

शाहबानो एक साधारण मुस्लिम महिला थी जिनका निकाह इंदौर के वकील मोहम्मद अहमद खान से 1932 में हुआ था। इस निकाह से इस दंपति को 5 बच्चे हुए। इस निकाह के 14 साल बाद उनके खाविंद मोहम्मद अहमद खान ने दूसरा निकाह कर लिया। दूसरे निकाह के बाद भी वे साथ रहते रहे। मुश्किल तब पैदा हुई जब अप्रैल, 1978 में 62 साल की उम्र में शाहबानो को मोहम्मद अहमद खान ने तलाक दे दिया।

तलाक के वक्त मोहम्मद अहमद खान ने शाहबानो को 200 रुपए महीना देने का वादा किया लेकिन कुछ समय बाद उन्होंने इस खर्च को देने से इनकार कर दिया। तब शाहबानो ने गुजारा भत्ता पाने के लिए इंदौर की स्थानीय अदालत में एक केस दायर किया और दलील दी कि उसके पास उसके बच्चों और अपनी देखरेख करने के लिए आय का कोई साधन नहीं है इसलिए उसे अपने पति से गुजारा भत्ता दिलवाया जाए। यह मुकदमा उन्होंने भारतीय कोड आफ क्रिमिनल प्रोसीजर की धारा 125 के तहत दायर किया था और गुजारा भत्ते के तौर पर प्रति माह 500 रुपए माँगे थे।

शाहबानो के पति मोहम्मद अहमद खान ने कोर्ट में दलील दी कि उसने मेहर के तौर पर निकाह के वक्त तय 5 हजार 400 रुपए की रकम अदा कर दी है और इसके बाद इस्लामिक

क़ानून के मुताबिक उसकी तरफ से शाहबानो को गुजारा भत्ता देना आवश्यक नहीं है।कोर्ट ने इस दलील को मानने से इंकार कर दिया और अगस्त, 1979 को शाहबानो के पति को 25 रुपए प्रतिमाह गुजरा भत्ता देने के आदेश दे दिए।

कोर्ट के इस फ़ैसले पर मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय में शाहबानो द्वारा रिव्यू पिटिशन लगाई गई। 1 जुलाई, 1980 को हाईकोर्ट ने रिव्यू पिटिशिन पर शाहबानो के पक्ष में फ़ैसला देते हुए गुजरा भत्ते में इजाफा करते हुए इसे 179.20 रुपए कर दिया। शाहबानो के पति ने इस फ़ैसले के विरुद्ध भारत की सर्वोच्च अदालत में अपील की। इसी अपील पर उच्चतम न्यायालय ने एक एतिहासिक फ़ैसला दिया।

शाहबानो के पति मोहम्मद अहमद खान ने उच्चतम न्यायालय में अपील में तर्क दिया कि उसने दूसरा निकाह कर लिया है जो कि इस्लामिक लॉ में जायज है और इस वजह से पत्नि के तौर पर वह गुजारा भत्ता देने के लिए बाध्य नहीं हैं। उच्चतम न्यायालय में इस मसले को सबसे पहले 3 फरवरी, 1981 को दो जजों की बेंच द्वारा सुना गया। इन दो जजों जिनमें मुर्तजा फजल अली और ए. वरदराजन शामिल थे. मामले की गंभीरता को देखते हुए इसे बडी बेंच को यह मामला सुनने के लिए रेफर कर दिया।

इस मामले को 5 जजों की बेंच द्वारा सुना जाने के दौरान इस मामले में ऑल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड और जमीयत उलेमा-ए-हिंद पक्षकार बन गए। इस 5 जजों वाली बेंच में तत्कालीन मुख्य न्यायधीश न्यायमूर्ति चंद्रचूड़, रंगनाथ मिश्रा, डी.ए. देसाई, ओ. चिनप्पा रेड्डी और ई.एस. वेंकटरमैया शामिल थे।

इस मामले की सुनवाई करीब चार साल तक चलती रही और 23 फरवरी, 1985 को उच्चतम न्यायालय ने एकमत से हाईकोर्ट द्वारा दिए गए फ़ैसले को सही ठहराया। शाहबानो मामले में फ़ैसला सुनाते हुए उच्चतम न्यायालय ने कहा कि इस मामले में कोई विवाद नहीं है कि सी.आर.पी.सी. की धारा 125 जिसके तहत हाईकोर्ट ने शाहबानो के पति को गुजारा भत्ता देने का आदेश दिया है, वह मुस्लिमों पर भी लागू होती है।यह धारा किसी जाति, धर्म और वर्ण में कोई भेद नहीं करती है। सी.आर.पी.सी. की धारा 125 के तहत शाहबानो के पति को गुजारा भत्ता देना ही होगा। सी.आर.पी.सी. की धारा 125 पत्नी, बच्चों और अभिभावकों के संरक्षण के लिए लागू की गई थी। इस धारा में 5 सब सेक्शन है जो पुरूष या स्त्री को अपना गुजारा न करने में सक्षम पत्नी, बच्चों और वृद्ध माता को भत्ता देना अनिवार्य बनाता है। इसमें अधिकतम 500 रुपए गुजारा भत्ता दिया जा सकता है।

शाहबानो केस में उच्चतम न्यायालय का फ़ैसला आते ही कई मुस्लिम तबकों में गहरे गुस्से और रोष का असर देखने को मिला और कई संगठन इस फ़ैसले के विरोध में सड़क पर उतर आए। कई मुस्लिम तबको को इस बात की आपत्ति थी कि इस फ़ैसले से उनके धार्मिक अधिकारों का हनन हो रहा है।

1985 में जब सुप्रीम कोर्ट ने यह फ़ैसला सुनाया उस से एक साल पहले कांग्रेस इंदिरा

गांधी की हत्या के बाद हुए चुनावों में भारी बहुमत से चुनकर आई थी। राजीव गांधी भारत के प्रधानमंत्री बने थे। शाहबानो केस से उठे तूफान को शांत करने के लिए कई कांग्रेसी नेताओं ने प्रधानमंत्री राजीव गांधी को उच्चतम न्यायालय के फ़ैसले को दो तिहाई बहुमत से बदल देने की सलाह दी।

राजीव गांधी ने उनकी बात मान ली और इस फ़ैसले को पलटने के लिए संसद में द मुस्लिम विमन (प्रोटेक्शन आफ राइट्स आन डाइवोर्स) एक्ट, 1986 लाया गया। इस एक्ट में इस बात की व्यवस्था की गई कि इस्लामिक क़ानून के अनुसार मुस्लिम महिलाओं को तलाक की प्रक्रिया में केवल इद्दत के दौरान ही अपने शौहर की ओर गुजारा भत्ता दिया जाएगा।

इस एक्ट को संसद द्वारा पास कर दिया गया और इसी के साथ कांग्रेस पर मुस्लिम तुष्टिकरण का एक कभी न मिटने वाला किस्सा हमेशा के लिए अस्तित्व में आ गया और मुस्लिम महिलाओं के साथ कुछ हद तक न्याय होता होता रहा गया। मुस्लिम तुष्टिकरण का यह आरोप कोई पहली बार नहीं लगा था। जब संविधान में राज्य के नीति निदेशक तत्वों में अनुच्छेद 44 में समान नागरिक संहिता जोड़ा गया था और बाद में जब देश के प्रथम विधि मंत्री डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने नेहरू केबिनेट से त्याग-पत्र दिया था तो उन्होंने तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू के बारे में इस त्यागपत्र में अन्य बातों के साथ कहा था कि प्रधानमंत्री का पूरा ध्यान मुसलमानों की हित सुरक्षा में लगा रहता है। मैं इस पर कोई आपत्ति नहीं कर रहा हूँ, किंतु क्या केवल भारत में मुसलमानों के हितों की ही सुरक्षा की जानी है? क्या केवल वही भारत में रहते हैं? भारत के अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति का क्या, जबकि उनके हितों को मुसलमानों के हितों से अधिक ध्यान दिए जाने की जरूरत है।

देश की आजादी के बाद से समान नागरिक संहिता या यूनिफॉर्म सिविल कोड की माँग चलती रही है। इसके तहत इकलौता क़ानून होगा जिसमें किसी धर्म, लिंग और लैंगिक झुकाव की परवाह नहीं की जाएगी।

उच्चतम न्यायालय ना केवल वर्ष 1985 में शाहबानो मामले में बल्कि 1995 में सरला मुद्गल मामले में और पुनः वर्ष 2019 में पाउलो काटिन्हो बनाम मारिया लुईजा वेलेंटीना परेरा मामले में भारत सरकार से समान नागरिक संहिता लागू करने के लिए कह चुका है।

लेकिन यह भी एक सच्चाई है कि एक समान क़ानून की आलोचना देश का हिंदू बहुसंख्यक और मुस्लिम अल्पसंख्यक दोनों समाज करते रहे हैं। जहाँ तक भारतीय जनता पार्टी का प्रश्न है उसके चुनाव घोषणा-पत्र में यह हमेशा वैचारिक मुद्दा रहा है। उनके चुनाव घोषणा पत्र में दो और चुनावी मुद्दे थे। एक राम जन्मभूमि का और दूसरा कश्मीर से अनुच्छेद 370 हटाने का। यह दोनों चुनावी वायदे पूरे हो गए हैं और अब केवल यही चुनावी मुद्दा शेष है। देश में समान नागरिक संहिता की माँग अब काफी जोर पकड़ चुकी है।वैसे भी जब भी देश में किसी राज्य में चुनाव होता है तो भारतीय जनता पार्टी उस समय यह जनता को याद दिलाती है वह राज्य में शीघ्र ही समान नागरिक संहिता लागू करेगी। उसके लिए एक कमेटी गठित

की जाएगी और उस कमेटी की शिफारिशों के अनुसरण में समान नागरिक संहिता लागू की जाएगी। अब तक उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश, हिमाचल, गुजरात, कर्नाटक के चुनावों के समय यह घोषणा की गई थी। गुजरात, उत्तराखंड में इस पर विचार करने के लिए कमेटी गठित कर दी गई थी। उत्तराखंड मुख्यमंत्री श्री धामी ने घोषणा कर दी है कि समान नागरिक संहिता का प्रारूप तैयार होने वाला है और शीघ्र ही उसे राज्य में लागू किया जाएगा।

सबसे पहले, यह समझना महत्त्वपूर्ण है कि भारत जैसे विविध धार्मिक और सांस्कृतिक पहचान वाले देश मे समान नागरिक संहिता का कार्यान्वयन एक अत्यधिक संवेदनशील मुद्दा है। इसे लागू करने के लिए लोगों को विश्वास में लेना जरूरी है कि समान नागरिक संहिता किसी समुदाय के अधिकारों और विश्वासों का उल्लंघन नहीं करता है। इस संबंध में, सरकार को धार्मिक नेताओं और समुदाय के प्रतिनिधियों सहित सभी लोगों से उनकी चिंताओं को दूर करने और आम सहमति पर पहुँचने के लिए रचनात्मक बातचीत करनी चाहिए।

समान नागरिक संहिता के कार्यान्वयन के लिए एक मजबूत राजनीतिक इच्छाशक्ति और अनुकूल वातावरण की भी आवश्यकता है। भारत में राजनीतिक माहौल अत्यधिक ध्रुवीकृत है, भिन्न-भिन्न राजनीतिक दल अक्सर अपने एजेंडे को आगे बढ़ाने के लिए धर्म और पहचान की राजनीति का उपयोग करते हैं। सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि समान नागरिक संहिता के कार्यान्वयन का उपयोग राजनीतिक लाभ के लिए एक उपकरण के रूप में नहीं करे और यह गैर-पक्षपातपूर्ण और समावेशी तरीके से किया जाए क्योंकि इसे लागू कर ही संपूर्ण देश में लैंगिक न्याय, सामाजिक समानता और राष्ट्रीय एकता को सुनिश्चित किया जा सकता है। इस मुद्दे पर जनता को शिक्षित और संवेदनशील बनाने के लिए सरकार, नागरिक समाज और मीडिया की ओर से एक ठोस प्रयास की आवश्यकता होगी।

वैसे देखा जाए तो विश्व के कई देशों में समान नागरिक संहिता लागू है और इन देशों में पाकिस्तान, बांग्लादेश, मलेशिया, तुर्किये, इंडोनेशिया, सूडान, मिस्र, अमेरिका, आयरलैंड, आदि शामिल हैं। इन सभी देशों में सभी धर्मों के लिए एकसमान क़ानून है और किसी धर्म या समुदाय विशेष के लिए अलग क़ानून नहीं हैं। भारत एक धर्म निरपेक्ष देश है और उस पर विडंबना यह है यहीं पर कई समुदायों के अभी भी धर्म आधारित व्यक्तिक विधियाँ हैं।

समान नागरिक संहिता के संबंध में भारत में व्यापक रूप से बहस हो रही है। विधि आयोग द्वारा जनता की आमंत्रित राय भी अगले महीने तक प्राप्त हो जाएगी। अगर भारत सरकार लोक सभा में अगले सत्र में समान नागरिक संहिता पर प्रस्तावित विधेयक प्रस्तुत करती है तो अच्छा यह रहेगा कि उस पर और व्यापक विचार विमर्श के लिए उसे संसदीय समिति को प्रेषित किया जाए। इस तरह विपक्ष की संभावित माँग भी पूरी होगी और तब शायद उस विधेयक को राज्यसभा में पारित कराना सुगम होगा। यह तो मान कर ही चलना होगा कि इस क़ानून को बनाना एक चुनौती है परंतु देश के लिए हितकारी नियम कायदे क़ानून तो बनने ही चाहिए।

❑

जस्टिस मार्कंडेय काटजू

मत्स्य न्याय और मानव अधिकार

(समाज में जब अराजकता का माहौल होगा और अगर वह सत्ता पक्ष की साठगाँठ से होगा तो सबसे अधिक प्रभावित होंगे आम नागरिक। उन्हें न तो भारत संविधान द्वारा प्रदत्त मूल अधिकार अथवा क़ानून द्वारा सृजित अधिकार मिलें, मानव अधिकारों का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इसी संदर्भ में न्यायमूर्ति जस्टिस मार्कंडेय काटजू का यह राईट आप आँखें खोलने वाला है। हालाँकि आजकल वह ट्विटर पर ट्वीट करते हैं मेरा उनसे अधिकांश पर सहमत हो पाना संभव नहीं होता पर इस राइट आप में जो लिखा है, उससे नाइत्तफ़ाकी का सवाल ही पैदा नहीं होता।) -- (संपादक)

आज सुबह मैंने अपने इस मैसेंजर पर किसी के द्वारा भेजा गया यह संदेश देखा :

"नमस्ते सर, मैं इलाहाबाद हाई कोर्ट में प्रैक्टिस करने वाला वकील हूँ। आज एक बुजुर्ग अधिवक्ता ने मुझे आपके पिछले समय की याद दिलाई जब आप इलाहाबाद उच्च न्यायालय के सिटिंग जज थे। मैं विध्वंस (demolition) के एक मामले पर बहस करने के लिए इंतजार कर रहा था, जब मेरे बगल में बैठे एक बहुत बुजुर्ग वकील ने कहा, ''आज के जज क्या डिमोलीशन रोकेंगे? वो जस्टिस काटजू था जो ऐसे अफसरों की हेकड़ी निकाल देता था। मैं उस वक्त का वकील हूँ जब काटजू जैसे जज एक भी दुकान या मकान नहीं गिरने देते थे।''

इस संदेश ने मुझे याद दिलाया कि लगभग 25 साल पहले क्या हुआ था और शायद वह बुजुर्ग वकील किस बात का जिक्र कर रहे थे।

मैं तब 1991 में नियुक्त, इलाहाबाद उच्च न्यायालय का एक कनिष्ठ न्यायाधीश था।

यूपी में, 1993 में राज्य विधानसभा चुनाव हुए और सुश्री मायावती के मुख्यमंत्रित्व काल में एक गठबंधन सपा-बसपा सरकार सत्ता में आई। सपा और बसपा निचली जातियों का प्रतिनिधित्व करने का दावा करते हैं और इसलिए निचली जातियों के लिए 'सामाजिक न्याय' के अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, राज्य में सत्तारूढ़ राजनेताओं ने उच्च जातियों के घरों को हड़पने के लिए एक अनूठी कार्य-प्रणाली तैयार की। यह कार्य-प्रणाली थी, किराया नियंत्रण और बेदखली अधिकारी Rent Control -- Eviction Officer (जो एक सरकारी अधिकारी होने के नाते सत्ताधारी राजनेताओं के आदेशों का पालन करने को मज़बूर थे) द्वारा

मालिक/किराएदार/अधिभोगी के पीछे (यानी बिना उस पर कोई नोटिस दिए) अलॉटमेंट ऑर्डर पास करना और और उसके बाद गुंडों और असामाजिक तत्वों की भीड़ (जो हर राजनीतिक दल के पास है) के साथ घर को जल्दी से हड़पना।

मैं तब उस अधिकार क्षेत्र में बैठा था जहाँ दर्जनों रिट याचिकाएँ दायर की गई थीं, जिसमें इस तरह के अवैध आवास हड़पने को चुनौती दी गई थी। मुझे जल्द ही एहसास हो गया कि अगर इसे जारी रखने की अनुमति दी गई तो राज्य में क़ानून व्यवस्था पूरी तरह से ध्वस्त हो जाएगी और जंगल राज कायम हो जाएगा।

मैंने यूपी के गृह सचिव और पुलिस महानिदेशक को तलब किया, उन्हें व्यक्तिगत रूप से मेरे न्यायालय में पेश होने का आदेश दिया। खचाखच भरी अदालत में जब वे पेश हुए तो मैंने उनसे कहा कि क़ानून-व्यवस्था बनाए रखना नौकरशाहों और पुलिस अधिकारियों का कर्त्तव्य है, लेकिन यह अफ़सोस की बात है कि वे राजनेताओं के सामने कायरतापूर्ण व्यवहार करके अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं कर रहे हैं।

मैंने उन्हें बताया कि हमारे प्राचीन विचारकों का विचार था कि समाज में सबसे खराब संभव स्थिति अराजकता की स्थिति है। जब क़ानून का शासन ध्वस्त हो जाता है तब मत्स्य न्याय जन्म ले लेता है, जिसका अर्थ है जंगल का क़ानून।

संस्कृत में 'मत्स्य' शब्द का अर्थ मछली है, और मत्स्य न्याय का अर्थ उस स्थिति से है जब बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है। हमारे सभी प्राचीन विचारकों ने मत्स्य न्याय की निंदा की है (पी.वी. काणे द्वारा 'धर्मशास्त्रों का इतिहास' देखें, खंड 3 पृष्ठ 21)।

मत्स्य न्याय का यह विचार (बड़ी मछलियों का छोटी मछलियों को खा जाना, या कमजोरों पर मजबूतों का हावी हो जाना) अक्सर कौटिल्य, महाभारत और अन्य ग्रंथों में वर्णित है। इसका वर्णन शतपथ ब्राह्मण (अध्याय-11, 1.6.24) में भी है, जहाँ यह कहा गया है कि ''जब भी सूखा पड़ता है, तब ताकतवर कमजोर पर कब्ज़ा कर लेता है, क्योंकि जल ही क़ानून है'' अर्थात् बारिश के अभाव से क़ानून का शासन समाप्त हो जाता है, और मत्स्य न्याय का संचालन शुरू हो जाता है।

कौटिल्य कहते हैं, ''यदि दंड को नियोजित नहीं किया जाता है, तो यह मत्स्य न्याय की स्थिति को जन्म देता है, क्योंकि एक क़ानून के पालक की अनुपस्थिति में मजबूत कमजोर को खा जाता है।'' एक राजा की अनुपस्थिति में (अराजक) या जब सजा का कोई भय नहीं होता है तो मत्स्य न्याय की स्थिति पैदा हो जाती है (देखिए रामायण अध्याय-67, महाभारत का शांतिपर्व अध्याय 15, 16, 30 और 67, कामंदक अध्याय 40, मत्स्य पुराण (225.9), मानस उल्लास (2.20.1295), आदि)।

इस प्रकार महाभारत के शांतिपर्व में कहा गया है :

''राजा चेन्न भवेद्लोके पृथिव्यां दंडधारकः
शूले मत्स्या निवापक्षयं दुर्बलात बलवत्तराः"

अर्थात् ''जब दंड की छड़ी लिए राजा पृथ्वी की रक्षा नहीं करता है, तो मजबूत व्यक्ति कमजोर लोगों को नष्ट कर देते हैं, ठीक उसी तरह जैसे पानी में बड़ी मछलियाँ छोटी मछलियों को खा जाती हैं।''

महाभारत के शांतिपर्व में भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर से कहा कि अराजकता से बुरा संसार में कुछ भी नहीं है, क्योंकि मत्स्य न्याय की स्थिति में कोई भी सुरक्षित नहीं है। बुरे कर्ता को भी जल्दी या बाद में अन्य बुरे कर्ता निगल जाएँगे।

तब मैंने इन सभी घरों पर कब्ज़ा करने के मामलों में फ़ैसला सुनाया (उनमें से दर्जनों थे), वैध कब्ज़ा करने वालों को कब्ज़ा बहाल कर दिया और पुलिस को 24 घंटे के भीतर अवैध घर हड़पने वालों को बाहर निकालने का आदेश दिया। मैंने ऐसा इसलिए किया क्योंकि राज्य में घर हड़पने की भयावह घटनाओं के पीछे मुझे मत्स्य न्याय का खतरा मँडराता दिखाई दे रहा था (श्रीमती चेतन आत्मा गोविल बनाम रेंट कंट्रोल एंड एविक्शन ऑफिसर, सहारनपुर रिट याचिका 9973, 1995 में 9.5.1995 को दिए गए मेरे फ़ैसले को देखें)।

इसी प्रकार, राम कुमार अग्रवाल बनाम रेंट कंट्रोल एंड एविक्शन ऑफिसर, बरेली, 1994 की रिट याचिका 41457 में 28.4.19945 को दिए गए निर्णय में मैंने कहा, "यह अदालत इस स्थिति को बर्दाश्त नहीं कर सकती, अन्यथा कोई भी सभ्य और क़ानून का पालन करने वाला नागरिक अपने घर में सुरक्षित नहीं रहेगा। गुंडों की भीड़ एक गुप्त आवंटन आदेश के साथ घर में घुस सकती है, रहने वालों को मार सकती है, उन्हें उनके सामान के साथ बाहर फेंक सकती है और वहाँ पार्टी का झंडा फहरा सकती है, जैसा कि आजकल किया जा रहा है।''

इन घर हथियाने के मामलों में मेरे फ़ैसलों के ख़िलाफ सुप्रीम कोर्ट में अपील दायर की गई और जस्टिस कुलदीप सिंह की अध्यक्षता वाली बेंच ने सभी को खारिज कर दिया।

इन फ़ैसलों को सुनाने के कुछ समय बाद मैं जस्टिस कुलदीप सिंह से दिल्ली में एक समारोह में मिला, जिसमें हम दोनों शामिल हुए थे। उन्होंने मुझसे कहा, "काटजू, ठोकते रहो, ठोकते रहो।''

सौजन्य : अंतर्जाल

❑

डॉ. ममता चतुर्वेदी

विमुद्रीकरण -- विशेषकर भारत के संदर्भ में और उच्चतम न्यायालय का निर्णय

विमुद्रीकरण के अर्थ से पहले मुद्रीकरण के अर्थ को समझना आवश्यक है। देश में मुद्रा के चलन को मुद्रीकरण कहा जाता है। यह मुद्रा क़ानूनी वैद्यता धारण किए हुए होती है और आमतौर पर उस देश की सरकार द्वारा जारी की जाती है। यह मुद्रा विनिमय का स्वीकृत रूप होती है जिसमें सिक्के और कागज के नोट शामिल होते हैं और उस मुद्रा को कोई भी व्यक्ति लेन-देन से अस्वीकार नहीं कर सकता है। व्यापार जगत में उसे पूरी तरह से मान्यता मिली होती है। जब वही मुद्रा क़ानूनी वैधता खो देती है अर्थात् चलन से बाहर कर दिया जाता है तब उसे विमुद्रीकरण या नोटबंदी कहा जाता है। इसके अंतर्गत कभी-2 पुरानी मुद्रा को नयी मुद्रा में परिवर्तित कर दिया जाता है, कभी बड़े मूल्य की मुद्रा को चलन से रोक दिया जाता है और कभी मुद्रा की एक श्रृंखला को चलन से रोक दिया जाता है।

मुद्रा की एक ईकाई की क़ानूनी वैधता समाप्त करना एक देश की अर्थव्यवस्था में एक कठोर हस्तक्षेप है, क्योंकि यह सीधे तौर पर सभी आर्थिक लेन-देन में उपयोग किए जाने वाले विनिमय के माध्यम को प्रभावित करता है। यह क़दम देश की मौजूदा समस्याओं को स्थिर करने में मदद कर सकता है या यह अर्थव्यवस्था में अराजकता पैदा कर सकता है, खासकर अगर यह अचानक या बगैर चेतावनी दिए किया जाता है। फिर भी कई कारणों से राष्ट्रों द्वारा अपने देश में विमुद्रीकरण किया जाता है। संक्षेप में, विमुद्रीकरण को मुद्रा के मूल्य को स्थिर करने, मुद्रास्फीति से निपटने के लिए, व्यापार को सुविधाजनक बनाने, नकदी पर निर्भर विकासशील अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण, भ्रष्टाचार, जालसाज़ी और कर चोरी जैसे आर्थिक अपराधों से निपटने के लिए एक साधन के रूप में अब तक आजमाया गया है। उदाहरण के लिए अमेरिका में 1873 में मुद्रा स्फीति का मुक़ाबला करने के लिए विमुद्रीकरण किया गया था जिसके तहत सोने के सिक्कों की कुछ श्रृंखला का प्रचलन बंद कर उसकी जगह चाँदी के सिक्कों को प्रचलित किया गया। जिम्बाब्वे सरकार ने भी 2015 में देश की मुद्रा स्फीति से निपटने के लिए अपने डॉलर का विमुद्रीकरण किया था। व्यापार को सुविधाजनक बनाने के लिए यूरोपीय संघ के राष्ट्रों ने भी सन् 2002 में विमुद्रीकरण किया था जिसके द्वारा यूरोपीय संघ के राष्ट्रों ने औपचारिक रूप से 'यूरो' को अपनी रोजमर्रा की मुद्राओं के रूप में उपयोग करना शुरू किया। फ्रांसिसी फ्रेंक और इतालवी

लीरा जैसी मुद्राओं का भी विमुद्रीकरण किया गया था।

भारत में भी कई बार विमुद्रीकरण किया गया था। पहली बार 1946 में ब्रिटिश सरकार ने 1000 रुपए और 10000 रुपए के नोटों को प्रचलन से हटा दिया था। इसके तीन दशक बाद 1978 में मोरारजी देसाई के नेतृत्व में जनता पार्टी की सरकार ने 1000 रुपए, 5000 रुपए और 10000 रुपए के नोटों को विमुद्रीकृत कर दिया था। अंत में अभी हाल में 8 नवंबर, 2016 को भारत सरकार ने 500 रुपए और 1000 रुपए के नोटों का विमुद्रीकरण भ्रष्टाचार पर अंकुश, नकली नोटों की छपाई पर लगाम लगाने, आतंकवादियों द्वारा इन उच्च मूल्य वर्ग के नोटों के प्रयोग पर रोक और विशेषकर काला धन (यह काला धन कर-अधिकारियों के समक्ष घोषित नहीं की गई आय होती है) संचित करने पर रोक लगाने के लिए किया गया था।

भारत सरकार ने 8 नवंबर, 2016 की शाम 8:00 बजे प्रधानमंत्री द्वारा टेलीविजन पर अर्थव्यवस्था के लिए गंभीर निहितार्थों से भरी एक ऐतिहासिक घोषणा की, कि तुरंत प्रभाव से दो उच्च मूल्य के 500 रुपए और 1000 रुपए के नोट कुछ एक कार्यों को छोड़कर (जैसे सार्वजनिक सेवाओं के बिलों के भुगतान आदि के लिए) शेष सभी कार्यों के लिए विधिमान्य करेंसी नहीं रहे। इस प्रकार, एक झटके में अर्थव्यवस्था के परिचलन की 86 प्रतिशत मुद्रा अवैध घोषित हो गई। ये नोट 30 दिसंबर 2016 तक बैंक खातों में जमा कराए जाने थे।

केंद्र सरकार द्वारा उपरोक्त विमुद्रीकरण का क़दम अर्थव्यवस्था से संबंधित कई ग़ैर-क़ानूनी कामों को रोकने के लिए उठाए गए, अनेक क़दमों के बाद उठाया गया था। ये क़दम इस प्रकार थे --

(1) बजट 2014 द्वारा विशेष अन्वेषण दल का गठन;
(2) काला धन और उस पर कर अधिनियम, 2015;
(3) बेनामी लेन-देन अधिनिमय, 2016;
(4) स्विटजरलैंड से जानकारी साझा करने का समझौता;
(5) मॉरीशस, साइप्रस और सिंगापुर के साथ कर संधियों में परिवर्तन; तथा
(6) अघोषित आय की घोषणा योजना।

भारत में विमुद्रीकरण का प्रभाव

वर्तमान विमुद्रीकरण से भारत में पड़ने वाले प्रभाव के तीन आयाम हैं -- क़ानूनी, राजनीतिक और आर्थिक। विमुद्रीकरण के राजनीतिक आयाम के बारे में विचार करें तो जनता ने इस निर्णय का खुले दिल से स्वागत किया है। वर्तमान भाजपा सरकार ने जिसके कार्यकाल में वर्तमान विमुद्रीकरण लागू किया गया, सन् 2016 से देश में अब तक हुए प्रमुख चुनावों में जिसमें 2019 के राष्ट्रीय आम चुनाव भी शामिल हैं, भारी बहुमत से जीत हासिल की है जिससे पता चलता है कि देश की जनता ने वर्तमान सरकार की दृष्टि और निर्णयों पर पूरा भरोसा दिखाया है।

विमुद्रीकरण के आर्थिक प्रभाव की यदि चर्चा करें तो यह नोटबंदी, भ्रष्टाचार, कालेधन, जाली मुद्रा और आतंकवाद के ख़िलाफ़ एक निर्णायक प्रहार था। विमुद्रीकरण के परिणाम-स्वरूप कारोबारी माहौल में अधिक पारदर्शिता आई है, साथ ही कर अनुपालन में भी वृद्धि हुई है। भारत वर्ष की अर्थव्यवस्था में नकदी का चलन बहुत ज्यादा था। नक़दी से किए जाने वाले सौदों में लेन-देन करने वालों के बारे में पता नहीं चल पाता है। इससे बैंकिग प्रणाली की अनदेखी होती है और नकदी में सौदा करने वाले लोग टैक्स चोरी करने में कामयाब हो जाते हैं। विमुद्रीकरण ने कैश रखने वालों को बैंक में नकद राशि जमा करने के लिए विवश किया। इस दौरान भारी भरकम नकद राशि बैंकों में जमा की गई और इसके साथ ही यह रकम जमा करने वालों की पहचान भी हो गई जिसके परिणामस्वरूप 17.42 लाख खाताधारक संदिग्ध/फर्जी पाए गए जो नकली नाम से खाता खोले हुए थे। इन खाता धारकों से ऑनलाइन जानकारियाँ प्राप्त की गई हैं। नियम कायदों का उल्लंघन करने वाले लोगों पर दंडात्मक कार्यवाही की गई। विमुद्रीकरण के बाद हवाला कारोबार जो आतंकवादियों तक धन पहुँचाने का माध्यम बना हुआ था, बुरी तरह प्रभावित हुआ। परिणामस्वरूप, आतंकवादी घटनाओं पर लगाम लग सका। चूँकि विमुद्रीकरण की वजह से अलगाववादियों के वित्तपोषण को गंभीर झटका लगा है जिससे कष्मीर घाटी में पथराव करने वालों के बीच शांति लाने में मदद मिली है। काला धन या तो खातों में आ गया या बर्बाद हो गया। बैंकों में बड़ी मात्रा में राशि जमा होने से बैंकों की ऋण देने की क्षमता में सुधार हुआ। इस धन का एक बड़ा हिस्सा म्युचुअल फंडों में निवेश किया गया और यह राशि औपचारिक अर्थव्यवस्था का हिस्सा बन गई और इसका संचय करने वाले लोंगो को कर (टैक्स) के दायरे में लाया गया जिससे प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर संग्रह में बहुत वृद्धि हुई। अब कर प्रणाली के दायरे में आने से बचना लगातार मुश्किल होता जा रहा है।

भारत को नकद लेन-देन वाली व्यवस्था से डिजिटल लेन-देन की ओर ले जाने के लिए व्यापक बदलाव की आवश्यकता थी। विमुद्रीकरण और जीएसटी लागू होने से नकद लेन-देन पर बड़े पैमाने पर रोक लगी है। डिजिटल लेन-देन में वृद्धि देखी जा रही है। देश में विमुद्रीकरण और जी.एस.टी. लागू होने के बाद करदाताओं की संख्या वर्ष 2013-14 में 3.8 करोड़ थी जो 7 सितंबर, 2021 में यह संख्या 8.83 करोड़ हो गई। यूनिफाइड पेमैंट इंटरफेस (यू.पी.आई.) की शुरूआत वर्ष 2016 में की गई थी जहाँ अक्टूबर, 2016 में इस माध्यम के जरिए 0.5 अरब रुपए का लेन-देन हुआ था वहीं वर्ष 2018 तक आते-आते यह राशि 598 अरब रुपए हो गई थी। यू.पी.आई. तकनीक से त्वरित भुगतान करने के लिए एन.पी.सी.आई. ने भारत में 'भीम' नामक 'ऐप' विकसित किया है। विमुद्रीकरण और जी.एस.टी. लागू होने से कर दायरे में आने वाली वस्तुओं और सेवाओं की वास्तविक खपत में भी बढ़ोत्तरी हुई जिससे अप्रत्यक्ष कर और प्रत्यक्ष कर संग्रह में वृद्धि हुई है।

रूपे कार्ड का उपयोग प्वाइंट आफ सेल (पी.ओ.एस.) और ई-कामर्स दोनों के लिए किया जाता है। विमुद्रीकरण से पहले जहाँ रूपे कार्ड से आनलाइन भुगतान 3 अरब रुपए था वहीं

सितंबर, 2018 में यह आँकड़ा बढ़कर 27 अरब रुपए हो गया। विमुद्रीकरण के बाद डिजिटल भुगतान दैनिक जीवन का एक अभिन्न अंग बन गया है। विमुद्रीकरण के परिणामस्वरूप लोगों के साथ-साथ संस्थाओं के दीर्घकालिक एवं प्रणालीगत व्यवहार में परिवर्तन हुआ है। इसके कारण डिजिटल लेन देन के उपयोग में स्थायी वृद्धि हुई है और इसका सकारात्मक प्रभाव भुगतान क्षेत्र में देखा गया है।

कर संग्रह में वृद्धि होने से सरकार ने इन संसाधनों का उपयोग बुनियादी ढाँचा निर्माण, समाजिक क्षेत्र और ग्रामीण भारत को बेहतर बनाने के लिए किया है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि आज हमारे गाँव पक्की सड़क से जुड़ रहे हैं, हर घर में बिजली पहुँची है, ग्रामीण स्वच्छता कवरेज 92 प्रतिशत हो गई है, जनता को अपने घर मिले हैं, घरों में खाना पकाने के लिए गैस कनेक्शन दिए गए हैं। आयुष्मान भारत के अंतर्गत दस करोड़ परिवारों को स्वास्थ्य लाभ दिया जा रहा है, जनता को सब्सिडी वाली खाद्य वस्तुएँ प्रदान की जा रही हैं, किसानों को न्यूनतम समर्थन मूल्य में 50 प्रतिशत की वृद्धि की गई है। किसानों को फसल बीमा योजना का लाभ दिया जा रहा है और विमुद्रीकरण करने के कुछ हफ़्तों बाद ही सातवें वेतन आयोग की सिफ़ारिशों को लागू किया गया। जन-धन खातों और डिजिटल भुगतान के साथ सरकार ने डायरेक्ट बेनिफिट ट्रांसफर इंफ्रास्ट्रक्चर की शुरूआत की जिससे सार्वजनिक वितरण प्रणाली की खामियों को दूर किया जा सका है।

जहाँ तक विमुद्रीकरण से भारत में पड़ने वाले क़ानूनी प्रभाव की बात है; तो 8 नवंबर 2016 को प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने जैसे ही राष्ट्र के नाम संदेश में 500 रुपए और 1000 रुपए के नोट पर रोक लगाने की घोषणा की, 9 नवंबर, 2016 को उच्चतम न्यायालय में सरकार के इस फ़ैसले को एक विवेक शर्मा नाम के व्यक्ति द्वारा चुनौती दी गई। इसके बाद इसी प्रकार की कुल मिलाकर 58 याचिकाएँ उच्चतम न्यायालय में लगायी गई। याचिका कर्ताओं की तरफ से प्रमुखतः कांग्रेस के वरिष्ठ नेता पी. चिदंबरम दलील देते रहे जिसके द्वारा उन्होंने सरकार के विमुद्रीकरण के फ़ैसले को असंवैधानिक बताने का प्रयास किया।

16 दिसंबर, 2016 को मुख्य न्यायाधीश उच्चतम न्यायालय द्वारा मामले को पाँच न्यायाधीशों की बड़ी पीठ के पास भेजा गया। 28 सितंबर, 2022 को उच्चतम न्यायालय ने मामले की सुनवायी के लिए संविधान पीठ का गठन किया जिसने केंद्र सरकार और भारतीय रिज़र्व बैंक को नोटिस जारी करके 9 नवंबर 2022 तक यह बताने को कहा कि किस क़ानून के तहत 1000 रुपए और 500 रुपए के नोट बंद किए गए थे। अदालत ने केंद्र सरकार और भारतीय रिज़र्व बैंक को हलफनामें पर अपना जवाब देने को कहा।

7 सितंबर, 2022 को उच्चतम न्यायालय ने विमुद्रीकरण पर अपने फ़ैसले को सुरक्षित रखा और केंद्र व भारतीय रिज़र्व बैंक को मामले से संबंधित सभी दस्तावेज़ अवलोकनार्थ रिकॉर्ड पर रखने का निर्देश दिया। 2 जनवरी, 2023 को उच्चतम न्यायालय ने अपना फ़ैसला सार्वजनिक किया।

संविधान पीठ ने फ़ैसले की संवैधानिकता पर विचार करने के लिए छह प्रश्न तैयार किए थे जो निम्न प्रकार थे --

1. क्या भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 की धारा 26 उपखंड (2) के तहत केंद्र सरकार को मिली शक्तियों का उपयोग बैंक नोट की 'सभी श्रेणियों' के नोटों का विमुद्रीकरण करने के लिए किया जा सकता है, या किसी 'एक' या 'कुछ' श्रेणी के बैंक नोटों का विमुद्रीकरण किया जा सकता है? खासकर यह देखते हुए कि उक्त अधिनियम की धारा 26 के उपखंड (2) में बैंक नोटों की 'कोई श्रेणी' शब्द लिखा है। इसके अतिरिक्त जैसा सरकार द्वारा पूर्व में दो अवसरों पर विमुद्रीकरण की इस शक्ति का प्रयोग पूर्ण संसद सत्र द्वारा पारित अध्यादेश द्वारा किया गया था, तो क्या सरकार इस शक्ति का प्रयोग बिना संसद सत्र् बुलाए भी कर सकती है?
2. यदि यह मान भी लिया जाए कि उक्त अधिनियम के उपखंड (2) का तात्पर्य बैंक नोट की 'सभी श्रेणियों' के नोटों के विमुद्रीकरण से है तो क्या यह विमुद्रीकरण करने की शक्ति पूरी तरह से केंद्र सरकार के पास है? यदि ऐसा है तो इसे समाप्त किया जाना चाहिए क्योंकि तब यह शक्ति असंवैधानिक होगी।
3. क्या 8 नवंबर, 2016 को जो फ़ैसला लिया गया उसकी प्रक्रिया क़ानूनी दृष्टि से त्रुटिपूर्ण थी?
4. क्या विमुद्रीकरण का उक्त फ़ैसला इसलिए ख़ारिज किया जाना चाहिए क्योंकि वह 'आनुपातिकता' की कसौटी पर खरा नहीं उतरा है?
5. क्या विमुद्रीकरण के उक्त फ़ैसले द्वारा नोट बदलने के लिए दी गई अवधि तार्किक नहीं थी?
6. विनिर्दिष्ट (स्पेसीफाइड) बैंक नोट्स (देयताओं की समाप्ति) अधिनियम 2017 विमुद्रीकृत मुद्रा को प्राप्त करने, रखने, और उसके अंतरण करने को निषेध ठहराता है और ऐसा करने पर जुर्माने का भी प्रावधान है। तो क्या भारतीय रिज़र्व बैंक के पास उपरोक्त अधिनियम की धारा 4 के उपखंड (2) के द्वारा विमुद्रीकरण द्वारा निर्धारित अवधि बीत जाने के बाद भी विमुद्रीकृत नोटों को स्वीकार करने की शक्ति है?

उपरोक्त क़ानूनी प्रश्नों पर उच्चतम न्यायालय का मत

उच्चतम न्यायालय में माननीय न्यायाधीश एस अब्दुल नजीर की अध्यक्षता में पाँच जजों की संविधान पीठ ने चार-एक के बहुमत के फ़ैसले में 8 नवंबर, 2016 के केंद्र सरकार के विमुद्रीकरण के फ़ैसले को सही ठहराया है।

संविधान पीठ द्वारा केंद्र सरकार के फ़ैसले की संवैधानिकता पर विचार करने के लिए जो छः प्रश्नों की सूची बनाई गई थी, उन प्रश्नों पर प्रश्नवार उच्चतम न्यायालय में बहुमत का मत निम्न प्रकार से था --

1. भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 की धारा 26 की उपधारा (2) के अनुसार

'भारतीय रिज़र्व बैंक के केंद्रीय मंडल की संस्तुति पर केंद्रीय सरकार गजट में अधिसूचना द्वारा यह घोषणा कर सकती है कि अधिसूचना में निर्दिष्ट तिथि से किसी विशेष अंकित मूल्य वाले बैंक नोटों की कोई श्रेणी विधिमान्य मुद्रा नहीं होगी, सिवाय बैंक के ऐसे कार्यालय या एजेंसी के समक्ष और उस सीमा तक जो कि अधिसूचना में निर्दिष्ट है[1]

पहले प्रश्न पर याचिकाकर्ताओं की तरफ से वरिष्ठ अधिवक्ता पी. चिदंबरम का तर्क था कि सरकार को गजट में एक अधिसूचना जारी करके किसी भी मूल्य वाले बैंक नोटों की 'सभी शृंखलाओं' को विमुद्रीकृत करने की शक्ति, भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 की धारा 26 (2) के तहत उपलब्ध नहीं है, केवल बैंक नोट्स की 'कुछ श्रेणी' को विमुद्रीकृत करने की शक्ति प्राप्त है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि भारतीय रिज़र्व बैंक को किसी 'विशेष' अंकित मूल्य वाले बैंक नोटों की 'कोई विशेष शृंखला' न कि 'सभी शृंखलाएँ' को विमुद्रीकृत करने की केंद्र सरकार को 'केवल' सिफ़ारिश करने का अधिकार है जिसको केंद्र सरकार के प्रस्ताव पर संसद में अर्थपूर्ण बहस के बाद अधिनियम बनाके लागू किया जा सकता है।

इस संबंध में आगे वरिष्ठ वकील ने तर्क दिया कि भारत में पहले भी दो बार विमुद्रीकरण हो चुका है। पहली बार सन् 1946 में ब्रिटिश सरकार ने 1000 रुपए और 10000 रुपए के नोटों को प्रचलन से हटा दिया था और दूसरी बार 1978 में जनता पार्टी की सरकार ने रुपए 1000/-- रुपए 5000/-- और रुपए 10000/-- के नोटों को विमुद्रीकृत कर दिया था। इन दोनों ही अवसरों पर विमुद्रीकरण के लिए अलग-अलग अधिनियम बनाए गए। यदि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 की धारा 26 ने सरकार को यह अधिकार दिया है कि वह संसदीय क़ानून या बहस के बिना इस शक्ति का प्रयोग कर सकती है तो वर्ष 1946 और वर्ष 1978 में नोटबंदी के दौरान अलग-2 अधिनियम क्यों बनाए गए थे।

1. परिशिष्ट, भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934, आधुनिक बैंकिग विधि-लेखिका ममता चतुर्वेदी

वर्ष 1978 की विमुद्रीकरण की प्रक्रिया को भी संवैधानिक चुनौती दी गई थी और तब भी उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ ने फ़ैसला किया था कि विमुद्रीकरण अधिनिमय, 1978 'वैध क़ानून' था।

2016 के विमुद्रीकरण को चुनौती दे रहे याचिकाकर्ताओं ने निम्नलिखित पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए सरकार के 2016 के निर्णय को सरकार के 1978 के विमुद्रीकरण के निर्णय से अलग करके सुनवाई करने की माँग की;

(i) 1978 में विमुद्रीकृत नोट प्रचलन में मुद्रा के एक नगण्य हिस्से का प्रतिनिधित्व करते थे जो कि 1 प्रतिशत से कम था, जबकि 2016 के निर्णय के कारण लगभग 86 प्रतिशत मुद्रा को प्रचलन से रोक दिया गया।

(ii) 1978 के फ़ैसले ने बहुत समृद्ध अभिजात वर्ग के केवल एक छोटे से अंश को प्रभावित किया था जबकि 2016 के फ़ैसले का प्रभाव आम लोगों पर पड़ा है।

(iii) 1978 का निर्णय एक संसदीय विधान के माध्यम से लिया गया था जबकि 2016 का केंद्र सरकार का निर्णय एक कार्यकारी परिपत्र के आधार पर था।

उच्चतम न्यायालय में बहुमत याचिकाकर्ताओं के उपरोक्त तर्कों से सहमत नहीं था। बहुमत का मत था कि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 की धारा 26 (2) के तहत प्रयोग किए गए शब्दावली को उसके उद्देश्यपूर्ण संदर्भ में परिभाषित किया जाना चाहिए और अन्यथा रूप से उन शब्दावली को परिभाषित करना बेतुकापन होगा। एक उदाहरण देते हुए अदालत ने कहा कि यदि विमुद्रीकरण के समय देश में किसी एक विशेष मूल्य के बैंक नोट की 20 शृंखलाएँ प्रचलन में हों तो ऐसे में यदि याचिकाकर्ताओं के तर्कों को स्वीकार कर लिया जाए तो ऐसी स्थिति में केंद्रीय सरकार को उस विशेष मूल्य के बैंक नोटों की अधिकतम 19 शृंखलाएँ विमुद्रीकृत करने का अधिकार हो सकता है और उस मूल्य के बैंक नोट की एक शृंखला को विमुद्रीकरण के दायरे से बाहर रखना होगा जो कि देश में एक अस्तव्यस्तता वाली स्थिति होगी। अतः उच्चतम न्यायालय का बहुमत इस संबंध में याचिकाकर्ताओं के तर्कों से सहमत नहीं था, और बहुमत ने भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 की धारा 26 (2) में प्रयुक्त शब्द 'कुछ' का अर्थ' 'सभी श्रेणी' के बैंक नोट से लिया तथा यह निर्णय दिया कि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 की धारा 26 (2) के अंतर्गत भारतीय रिज़र्व बैंक की सिफ़ारिश पर केंद्र सरकार नोटबंदी के लिए सभी मूल्य वर्ग के बैंक नोटों की सभी शृंखलाओं के प्रचलन पर रोक लगा सकती है।

उपरोक्त संबंध में उच्चतम न्यायालय के एक माननीय न्यायाधीश नागरत्ना का मत बहुमत से भिन्न था उनका मत था कि भारतीय रिज़र्व बैंक, 1934 की धारा 26 (2) में प्रयुक्त शब्द 'कुछ' का अर्थ यदि 'सभी' श्रेणी के बैंक नोट से लगा लिया तो इसके द्वारा भारतीय रिज़र्व बैंक और उनकी अनुशंसा पर केंद्रीय सरकार को 'सभी' मूल्य वर्ग के बैंक नोटों के 'सभी' शृंखलाओं को विमुद्रीकृत करने की शक्ति प्राप्त हो जाएगी जिसके परिणामस्वरूप प्रत्येक मूल्य वर्ग रुपए 1/-- से लेकर रुपए 10000/-- तक के मूल्य वर्ग के बैंक नोटों को किसी भी समय प्रचलन से रोका जा सकता है और इतनी विस्तृत शक्ति के प्रयोग करने की अनुमति केंद्र सरकार को केवल गजट में एक अधिसूचना जारी करके भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 की धारा 26 (2) के अंतर्गत नहीं दी जा सकती है। इस शक्ति का प्रयोग केवल भारतीय रिज़र्व बैंक की अनुशंसा पर केंद्र सरकार के प्रस्ताव पर संसद में, अर्थपूर्ण बहस के बाद अधिनियम बना के ही किया जा सकता है।

2. इस प्रश्न पर कि यदि यह मान लिया जाए कि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 की धारा 26 (2) का अर्थ केंद्र को 'सभी' मूल्य वर्ग के बैंक नोटों की 'सभी' शृंखलाओं को विमुद्रीकृत करने की शक्ति प्राप्त है तो क्या यह केंद्र को नोटबंदी से संबंधित विस्तृत, अत्यधिक शक्ति प्रदान करना नहीं होगा? जिसकी कि अनुमति नहीं दी जा सकती है क्योंकि ऐसी शक्ति का प्रयोग असंवैधानिक होगा।

उच्चतम न्यायालय में बहुमत याचिकाकर्ताओं के इस संबंध में दिए गए तर्कों से भी सहमत नहीं था। बहुमत का मत था कि जहाँ तक भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 की धारा 26 (2) में यह व्यवस्था देने का प्रश्न है कि विमुद्रीकरण की घोषणा केंद्र सरकार द्वारा केवल भारतीय रिज़र्व बैंक के केंद्रीय मंडल की संस्तुति पर ही की जा सकती है तो इसका अर्थ है कि केंद्र सरकार को विमुद्रीकरण की घोषणा करने से पहले भारतीय रिज़र्व बैंक की संस्तुति लेना आवश्यक है और भारतीय रिज़र्व बैंक ऐसी संस्तुति केवल केंद्रीय सरकार को कर सकती है जो कि संसद के प्रति जवाबदेह होती है। भारतीय रिज़र्व बैंक ऐसी संस्तुति काफी विचार विमर्श के बाद करती है। इस प्रकार केंद्र सरकार को विमुद्रीकरण की एकतरफा शक्ति प्राप्त नहीं है। अतः यह नहीं कहा जा सकता है कि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 की धारा 26 (2) केंद्र सरकार को नोटबन्दी से संबंधित अत्यधिक शक्ति प्रदान करता है।

3. इस प्रश्न पर कि नोटबंदी 2016 का जो फ़ैसला लिया गया क्या उसकी प्रक्रिया क़ानूनी दृष्टि से त्रुटिपूर्ण थी जिसके कारण इस फ़ैसले को रद्द किया जाना चाहिए?

याचिकार्ताओं की ओर से वरिष्ठ एडवोकेट पी. चिदंबरम ने इस संबंध में कहा कि विमुद्रीकरण के प्रस्ताव को भारतीय रिज़र्व बैंक से केंद्र सरकार के पास जाना होता है लेकिन इस मामले में सरकार ने प्रस्ताव भारतीय रिज़र्व बैंक के पास भेज दिया। इस प्रक्रिया ने इस देश के क़ानून के शासन का मज़ाक बना दिया। विमुद्रीकरण का प्रस्ताव केंद्र सरकार द्वारा तैयार किया गया और भारतीय रिज़र्व बैंक से एक राय के रूप में सिफ़ारिश प्राप्त कर ली गई। भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा प्रस्तुत दस्तावेज़ में 'केंद्र सरकार की इच्छानुरूप' तथा 'सरकार द्वारा अनुशंसित' जैसे वाक्यांश यह दिखलाते हैं कि भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा इस मामले में स्वतंत्र दिमाग का इस्तेमाल नहीं किया गया और केंद्र की इच्छानुरूप अपनी संस्तुति दे दी और केंद्र की इच्छानुरूप निर्णय लेने की पूरी प्रक्रिया महज 24 घंटे में पूरी कर दी गई थी। वरिष्ठ एडवोकेट ने आगे कहा कि केंद्र ने विमुद्रीकरण का फ़ैसला लेने के दौरान, अहम दस्तावेज़ों को अपने पास रोक लिया था जिसमें सरकार द्वारा भारतीय रिज़र्व बैंक को 7 नवंबर, 2016 को लिखा गया पत्र और भारतीय रिज़र्व बैंक के केंद्रीय बोर्ड की बैठक के समक्ष रखा गया एजेंडा नोट, केंद्रीय बोर्ड की बैठक के कार्यवृत्तांत तथा केंद्रीय बोर्ड की सिफ़ारिशें/संस्तुति शामिल थीं जिसके कारण न तो भारतीय रिज़र्व बैंक के केंद्रीय बोर्ड और न ही केंद्रीय मंत्रिमंडल के पास विमुद्रीकरण के संभावित परिणामों के बारे में पूरी जानकारी थी। किसी को नहीं बताया गया था कि कुल मुद्रा का 86 प्रतिशत वापस ले लिया जायगा। इसके अतिरिक्त, न तो केंद्र सरकार और न ही भारतीय रिज़र्व बैंक ने अपने ज़वाबी हलफनामें में निर्णय लेने की प्रक्रिया के बारे में भौतिक विवरण प्रस्तुत किया है। वरिष्ठ एडवोकेट पी. चिदंबरम ने केंद्र और भारतीय रिवर्ज बैंक द्वारा दिए गए ज़वाबी हलफनामों के बीच विसंगतियों को उजागर किया और कहा कि उदाहरण के लिए भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा प्रस्तुत ज़वाबी हलफनामें में नोटबंदी के उद्देश्य के रूप में वित्तीय समावेशन व प्रोत्साहन, डिजिटलीकरण और कैशलैस, अर्थव्यवस्था की ओर

बदलाव का हवाला दिया गया था, जबकि केंद्र सरकार ने इसके उद्देश्य नकली मुद्रा को खत्म करना, बेहिसाब संपत्ति या काले धन को रोकना, नकली मुद्रा को मादक पदार्थों की तस्करी और आतंकवाद जैसी विध्वसंक गतिविधियों में इस्तेमाल होने से रोकना बताया था। एडवोकेट पी. चिदंबरम ने तर्क दिया कि ये उद्देश्य वास्तव में फ़ैसला होने के 6 वर्ष बाद भी प्राप्त नहीं किए गए और न ही ये उद्देश्य प्राप्त किए जा सकते थे। उन्होंने कहा कि निष्कर्ष केवल इतना है कि सरकार ने मनमानी ओर अनुचित नीति को सही ठहराने के लिए झूठे और भ्रामक उद्देश्य निर्धारित किए थे। इसलिए केंद्र सरकार की वर्तमान विमुद्रीकरण की प्रक्रिया बहुत दोषपूर्ण और क़ानूनी दृष्टि से त्रुटिपूर्ण थी और इस कारण इस विमुद्रीकरण को रद्द किया जाना चाहिए।

केंद्रीय बैंक की ओर से पेश वरिष्ठ एडवोकेट जयदीप गुप्ता ने कहा कि भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा केंद्र सरकार को सिफ़ारिश करने के लिए भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया गया। भारतीय रिज़र्व बैंक की केंद्रीय बोर्ड की बैठक में निर्धारित कोरम को पूरा किया गया था, जिसने केंद्र सरकार को सिफ़ारिश करने का फ़ैसला किया था। वर्तमान विमुद्रीकरण सरकार की मौद्रिक नीति का हिस्सा है। वर्तमान विमुद्रीकरण के बारे में विचार विमर्श केंद्र सरकार द्वारा फरवरी, 2016 से शुरू हो गया था, हालाँकि इस प्रक्रिया में गोपनीयता बरती गई थी और शीघ्रता बरती गई थी क्योंकि इसके अभाव में विमुद्रीकरण प्रभावकारी नहीं हो सकता था।

आगे वरिष्ठ एडवोकेट जयदीप गुप्ता ने कहा कि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 की धारा 26 (2) के तहत किसी मुद्रा को विमुद्रीकृत करने की सिफ़ारिश भारतीय रिज़र्व बैंक से निकली होनी चाहिए। इस प्रक्रिया के अंतर्गत दो चरण शामिल है यानि भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा सिफ़ारिश किया जाना और केंद्र सरकार द्वारा इस फ़ैसले का भौतिक रूप से पालन कराना। यह तर्क देना गलत है कि विमुद्रीकरण की प्रक्रिया भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा शुरू की जानी चाहिए क्योंकि भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 की धारा 26 (2) प्रक्रिया के प्रारंभ होने के बारे में बात नहीं करता है, यह केवल इतना कहता है कि विमुद्रीकरण की प्रक्रिया धारा में उल्लखित चरणों को पूरा किए बिना समाप्त नहीं होगी। यह प्रक्रिया केंद्र सरकार द्वारा भी शुरू की जा सकती है और केंद्रीय बैंक द्वारा भी शुरू की जा सकती है। देश में कई स्थितियाँ ऐसी होती हैं जिनके बारे में केंद्रीय बैंक को गहन जानकारी नहीं होती जैसे देश में आतंकवाद की समस्या, मादक पदार्थों की तस्करी की समस्या। ऐसे में केंद्र सरकार केंद्रीय बैंक से विमुद्रीकरण के बारे में प्रश्न करता है और जिसके जवाब में केंद्रीय बैंक एक सिफ़ारिश तैयार करता है जिसमें आर्थिक विशेषज्ञों की राय शामिल होती है। यह सिफ़ारिश विमुद्रीकरण करने के बारे में 'हाँ' या 'ना' कुछ भी हो सकती है। न्यायालय ने वरिष्ठ एडवोकेट जयदीप गुप्ता से यह स्पष्ट करने को कहा कि क्या इस मामले में केंद्र सरकार द्वारा भारतीय रिज़र्व बैंक से सलाह ली गई थी? तो भारतीय रिज़र्व बैंक के एडवोकेट जयदीप गुप्ता ने कहा कि वर्तमान विमुद्रीकरण की प्रक्रिया में हमने केंद्र सरकार को सिफ़ारिश दी थी।

उच्चतम न्यायालय में बहुमत से इस मामले में केंद्र सरकार और भारतीय रिज़र्व बैंक के तर्कों को स्वीकार किया और कहा कि केवल इस कारण से कि विमुद्रीकरण की प्रक्रिया केंद्र सरकार द्वारा शुरू की गई थी, इस प्रक्रिया को रद्द नहीं किया जा सकता है। भारतीय रिज़र्व बैंक के केंद्रीय बोर्ड की मीटिंग के कार्यवृत्तांत और इसकी सिफ़ारिशें जिसके आधार पर विमुद्रीकरण का फ़ैसला 8 नवंबर, 2016 को किया गया में स्पष्ट कहा गया कि भारतीय रिज़र्व बैंक और केंद्र सरकार ने विमुद्रीकरण की घोषणा करने से पहले इस विषय पर छह महीने से अधिक समय तक विचार विमर्श किया था, अतः इस घोषणा की निर्णय प्रक्रिया को त्रुटिपूर्ण नहीं कहा जा सकता है।

न्यायालय ने कहा कि जहाँ तक विमुद्रीकरण के फ़ैसले को मनमाना या अनुचित फ़ैसला मानने की बात है तो न्यायालय का मत है कि विमुद्रीकरण के उद्देश्यों जिनके लिए इसको लागू किया गया, को सरकार द्वारा कितना प्रभावकारी रूप में प्राप्त किया गया है या नहीं, प्रासंगिक नहीं है क्योंकि इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए उसके पास विशेषज्ञता नहीं है। अतः न्यायालय इस प्रश्न पर निर्णय भी नहीं दे सकती है।

न्यायालय का बहुमत केंद्र सरकार के इस मत से सहमत था कि विमुद्रीकरण के फ़ैसले को प्रभावकारी बनाने के लिए इस बारे में निर्णय प्रक्रिया के दौरान केंद्र सरकार ने जो गोपनीयता और शीघ्रता से काम किया, वह उचित था।

उपरोक्त संबंध में उच्चतम न्यायालय के एक माननीय न्यायाधीष नागरत्ना का मत बहुमत से भिन्न था। उनका मत था कि इस मामले में विमुद्रीकरण की सिफ़ारिश केंद्र सरकार द्वारा शुरू की गई थी न कि भारतीय रिज़र्व बैंक के केंद्रीय बोर्ड द्वारा। भारतीय रिज़र्व बैंक ने स्वतंत्र दिमाग का इस्तेमाल नहीं किया और केवल विमुद्रीकरण के लिए केंद्र सरकार की इस मामले में इच्छा को मंजूरी दी। यदि सरकार द्वारा वास्तव में प्रस्ताव लाया जाता तो यह संसद में अर्थपूर्ण बहस के बाद अधिनियम बना कर लागू किया जा सकता था। यदि विमुद्रीकरण अति आवश्यक और शीघ्र होना था तो केंद्र सरकार इसके लिए एक अध्यादेश जारी कर सकती थी जिसके लिए बाद में संसद से मंजूरी प्राप्त की जा सकती थी जैसाकि जम्मू कष्मीर के विशेष दर्ज़ा को समाप्त करने के लिए अगस्त, 2019 में संविधान की धारा 370 को समाप्त करने वाले अध्यादेश को जारी करके किया गया।

4. किसी क़ानून के आनुपातिकता के परीक्षण के लिए उस क़ानून का निम्नप्रकार से परीक्षण किया जाता है --

(i) उद्देश्य की तर्कसंगता
(ii) उस उद्देश्य जिसके लिए क़ानून बनाया गया, से क़ानून का तार्किक संबंध
(iii) उस क़ानून की आवश्यकता
(iv) क़ानून के अंतर्गत उठने वाले क़दमों के अच्छे और बुरे प्रभावों की आनुपातिकता।

उच्चतम न्यायालय में इस प्रश्न पर विचार किया गया कि 8 नवंबर, 2016 की विमुद्रीकरण

की अधिसूचना क्या इस आधार पर रद्द की जा सकती है कि यह क़ानून के आनुपातिकता के परीक्षण पर खरी नहीं उतरती?

याचिकाकर्ताओं की ओर से वरिष्ठ एडवोकेट पी. चिदंबरम ने तर्क दिया कि सरकार की विमुद्रीकरण की नीति 'आनुपातिकता' के परीक्षण में भी विफल रही। सरकार ने विमुद्रीकरण को सही ठहराने के लिए झूठे और भ्रामक उद्देश्य तैयार किए। ये उद्देश्य प्राप्त नहीं किए जा सकते थे। उदाहरणार्थ, भ्रष्टाचार से कमाई गई आय काली कमाई ही होती है, किंतु अधिकांश काली कमाई का माध्यम पूर्णतः विधिसंगत होता है। अधिकतर मामलों में वह कमाई इसलिए काला धन बन जाती है कि कर अधिकारियों के समक्ष उसकी घोषणा नहीं होती। उदाहरणार्थ, छोटे उद्यमी कच्चा माल की नकद ख़रीद करते हैं। वे स्वयं और उन्हें कच्चा माल बेचने वाले दोनों ही इस लेन-देन की कर-अधिकारियों के समक्ष घोषणा नहीं करते। इस प्रकार के लेन देन से जो कमाई होती है वह काला धन है, जिस पर विमुद्रीकरण द्वारा रोक लगाना मुश्किल है।

उपरोक्त बिंदु पर न्यायालय में बहुमत का मत था कि नकली करेंसी, काला धन और आतंकवादियों को धन की उपलब्धता पर रोक लगाना जैसे कार्य राज्य के लागों के लिए तार्किक हित वाले हैं और इन्हीं उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए विमुद्रीकरण का फ़ैसला लिया गया था। इन सार्वजनिक हित के उद्देश्यों का विमुद्रीकरण से तार्किक संबंध है।

तीसरे प्रकार के परीक्षण के लिए न्यायालय को यह परीक्षण करना था कि क्या सरकार का विमुद्रीकरण का वर्तमान फ़ैसला आवश्यक था?

उपरोक्त बिंदु पर न्यायालय में बहुमत का मत था कि यह बताना कि विमुद्रीकरण के लिए बताए गए उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए विमुद्रीकरण आवश्यक था या नहीं पूरी तरह आर्थिक विशेषज्ञों के अधिकार क्षेत्र में आता है। अतः इसका उत्तर भारतीय रिज़र्व बैंक ही दे सकता है। चौथे प्रकार के परीक्षण के लिए न्यायालय को यह परीक्षण करना था कि क्या विमुद्रीकरण के स्थान पर कोई वैकल्पिक क़दम भी उठाये जा सकते थे जिनसे समान उद्देश्य प्राप्त किए जा सकते थे, और जिससे नागरिकों को कम मात्रा में कष्ट उठाना पड़ता। विमुद्रीकरण के अंतर्गत उठाये गए क़दमों के अच्छे और बुरे प्रभावों की आनुपातिकता का भी न्यायालय को परीक्षण करना था।

याचिकाकर्ताओं की ओर से वरिष्ठ एडवोकेट पी. चिदंबरम ने न्यायालय के समक्ष राज्य के नागरिकों के कष्ट बयाँ किए कि नोटबंदी की अचानक घोषणा के बाद लोगों को ऐसा सदमा लगा कि कई लोगों की जान चली गई। विमुद्रीकरण के कारण लोगों के पास स्थानीय मुद्रा न होने के कारण भारत के पर्यटन व्यवसाय को काफी नुकसान हुआ। इसके कारण किसानों को भी काफी कठिनाई हुई क्योंकि व्यापारियों के पास मुद्रा न होने के कारण किसानों का अपनी फसल व सब्जी आदि सस्ते में बेचनी पड़ी। कुछ बैंकों के बाहर लगी लोगों की लम्बी लाइन उनकी मौत की वजह बनी। देश के कई हिस्सों में एटीएम के बाहर खड़ी भीड़ बेकाबू हो गई

जिससे अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न हो गई। विमुद्रीकरण के कारण 15 लाख लोगों की नौकरियाँ चली गईं क्योंकि व्यवसायियों के पास अपने कर्मचारियों को पैसा देने के लिए मुद्रा की कमी हो गई थी।

इस संबंध में उच्चतम न्यायालय में बहुमत का मत था कि जहाँ तक लोगों को विमुद्रीकरण द्वारा हुई मुश्किलों का प्रश्न है, यहाँ यह देखने की ज़रूरत है कि इस प्रक्रिया के अंतर्गत उठाये गए क़दमों का उद्देश्य क्या था। केवल इस कारण से कि कुछ नागरिकों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, यह क़ानून की दृष्टि से विमुद्रीकरण के फ़ैसले को गलत ठहराने का आधार नहीं हो सकता है।

याचिकाकर्ताओं की ओर से अपने तर्क के समर्थन में भारतीय रिज़र्व बैंक के पूर्व गवर्नर रघुराम राजन जो वर्तमान समय में चिकागो यूनिवर्सिटी में अर्थशास्त्र पढ़ाते हैं, की पुस्तक 'I do what I do' में वर्णित तथ्यों को उद्धृत किया जिसमें पूर्व गवर्नर ने खुलासा किया कि सरकार ने विमुद्रीकरण के बारे में फरवरी, 2016 में उनके विचार माँगे थे जिसे उन्होंने 'मौखिक' रूप से सरकार को बता दिया था जिसमें उन्होंने विमुद्रीकरण का समर्थन नहीं किया था क्योंकि उन्हें लगा कि इस तरह के विघटनकारी निर्णय से जुड़ी अल्पकालिक आर्थिक लागत इससे होने वाले किसी भी दीर्घकालिक लाभ से अधिक होगी। उनका विचार था कि विमुद्रीकरण के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सरकार के पास वैकल्पिक उपाय भी थे। हालाँकि पूर्व गवर्नर ने अपनी पुस्तक में यह स्पष्ट नहीं किया कि विमुद्रीकरण से जुड़ी अल्पकालिक आर्थिक लागत और संभावित दीर्घकालिक लाभ क्या हैं?

इस संबंध में उच्चतम न्यायालय में बहुमत का मत था कि यह निश्चित करना बहुत कठिन है कि विमुद्रीकरण के क्या वैकल्पिक उपाय थे जिसको सरकार द्वारा अपनाया जाना चाहिए था जिससे जनता को कम कष्ट उठाना पड़ता। उपरोक्त अनुपातिका के परीक्षण के संबंध में उच्चतम न्यायालय की माननीय न्यायाधीष नागरत्ना ने कहा कि चूँकि वह पहले ही मान चुकी है कि विमुद्रीकरण का सरकार का फ़ैसला अवैध था तो इस प्रश्न का उत्तर देने की कोई आवश्यकता ही नहीं बनती।

5. उच्चतम न्यायालय में इस प्रश्न पर विचार हुआ कि क्या 8 नवंबर, 2016 के विवादित विमुद्रीकरण की अधिसूचना द्वारा नोट बदलने के लिए दिया गया समय अवधि अतार्किक थी।

याचिकाकर्ताओं की ओर से पेश वरिष्ठ एडवोकेट का तर्क था कि विवादित अधिसूचना को 'सार्वजनिक उद्देश्य' के लिए लागू नहीं किया गया था जो कि अधिनियम लागू करने का एकमात्र आधार था तथा जिसके अंतर्गत अनिवार्य अधिग्रहण की अवस्था में मुआवज़ा पाने का संविधान अनुच्छेद 31 (2) के तहत याचिकाकर्ताओं का संवैधानिक अधिकार था जिससे याचिकाकर्ताओं को वंचित किया गया है। इस प्रकार, विवादित अधिसूचना लागू करके सरकार द्वारा संविधान के अनुच्छेद 31 (2) का उल्लघंन किया गया है। आगे उन्होंने तर्क दिया कि यदि यह मान लिया जाए कि अनुच्छेद 31 का उल्लंघन नहीं किया गया है तो वैकल्पिक रूप

से उच्च मूल्य वर्ग के नोटों को बदलने के लिए विमुद्रीकरण अधिनियम, 1978 की धारा 7 और 8 के तहत बैंक नोटों के लिए आवेदन करने और उसके तहत एक निर्धारित तरीके से समान मूल्य के नोटों को प्राप्त करने के लिए एक विस्तृत प्रक्रिया निर्धारित की गई है तथा साथ ही ऐसे नोटों के धारकों को समान विनिमय करने (नोट बदलने) के लिए एक उचित अवसर प्रदान करना आवश्यक था जबकि विवादित अधिसूचना द्वारा नोटों को बदलने के लिए दिया गया समय काफी सीमित था जो कि तर्कसंगत नहीं कहा जा सकता है। इस प्रकार सरकार ने विमुद्रीकरण की योजना को एक अनुचित और मनमानी तरीके से लागू करके संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (जी) के तहत व्यापार के मौलिक अधिकारों और अनुच्छेद 19 (1) (एफ) के तहत संपत्ति के मौलिक अधिकार वाले याचिकाकर्ताओं के संवैधानिक अधिकारों का उल्लघंन किया है।

उपरोक्त संबंध में उच्चतम न्यायालय में बहुमत का मत यह था कि जब अधिनियम के उपरोक्त प्रावधानों को विमुद्रीकरण अधिसूचना के उद्देश्य यानि उच्च मूल्य वर्ग के बैंक नोटों को यथाशीघ्र प्रचलन से रोकना, के संदर्भ देखना हो तो नोटों को बदलने के लिए 52 दिनों की निर्धारित अवधि को अनुचित नहीं कहा जा सकता है। अतः याचिकाकर्ताओं के इस संबंध में दिए गए तर्कों को स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

आगे न्यायालय ने माना कि अधिसूचना की प्रस्तावना से यह प्रकट होता है कि विमुद्रीकरण का उद्देश्य, कालाबजारी, आतंकवाद के वित्त पोषण पर रोक, नकली नोटों के चलन को रोकना आदि था जिसकी वजह से देश की अर्थव्यवस्था को होने वाले गंभीर ख़तरों से बचाने के लिए निश्चित यह अधिसूचना जारी की गई थी, देखकर यह नहीं कहा जा सकता है कि यह अधिसूचना एक 'सार्वजनिक उद्देश्य' के लिए अधिनियमित नहीं की गई थी।

याचिकाकर्ताओं के इस तर्क से कि अधिसूचना पारित करके सरकार द्वारा उनके संविधान के अनुच्छेद 31 के अंतर्गत प्राप्त उनके संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन किया गया है, न्यायालय का बहुमत सहमत नहीं था। उसका कहना था कि उच्चतम न्यायालय ने 1978 के विमुद्रीकरण के अधिनियम को 'वैध क़ानून' माना था जिसमें उच्चतम न्यायालय ने कोई हस्तक्षेप नहीं किया था और उस निर्णय में इन्हीं बिंदुओं पर विचार किया गया था। अतः उन्हीं बिंदुओं पर दुबारा विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

6. उच्चतम न्यायालय में इस प्रश्न पर भी विचार हुआ कि क्या भारतीय रिज़र्व बैंक के पास विमुद्रीकरण अधिसूचना द्वारा नोट बदलने की निर्धारित अवधि बीत जाने के बाद विनिर्दिष्ट बैंक नोट (देयताओं की समाप्ति) अधिनियम, 2017 के अंतर्गत स्वतंत्र रूप से विमुद्रीकृत नोट को स्वीकार करने के लिए अनुग्रह समय प्रदान करने की शक्ति है?

विनिर्दिष्ट बैंक नोट (देयताओं की समाप्ति) अधिनिमय, 2017 विमुद्रीकृत मुद्रा को प्राप्त करने, रखने और उसके अंतरण करने को निषेध ठहराता है और इसका उल्लघंन करने पर जुर्माने का भी प्रावधान है। फिर भी कुछ पूर्ववर्ती अधिनियम कुछ लोगों जैसे-विमुद्रीकरण की अधिसूचना

जारी होते समय विदेश में रहने वाले लोगों को विमुद्रीकृत नोटों को बदलने के लिए कुछ अनुग्रह समय प्रदान करता है।

इस संबंध में उच्चतम न्यायालय में बहुमत का मत था कि इस विषय पर पूर्ववर्ती अधिनियम को विनिर्दिष्ट बैंक नोट (देयताओं की समाप्ति) अधिनियम, 2017 का एक अंग माना जाए। न्यायालय ने यह भी कहा कि भारतीय रिज़र्व बैंक को ऐसी स्वतंत्र शक्ति नहीं है कि वह बंद किए गए नोट को वापस लेने की तारीख़ बदल दे। आगे न्यायालय ने कहा कि केंद्र सरकार भारतीय रिज़र्व बैंक की सिफ़ारिश पर ही इस तरह का निर्णय ले सकती है।

विमुद्रीकरण के फ़ैसले पर उच्चतम न्यायालय की मुहर

माननीय न्यायाधीश एस.ए. नजीर की अध्यक्षता वाली उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ ने चारः एक के अपने बहुमत वाले फ़ैसले में नोट बंदी के ख़िलाफ़ सभी 58 याचिकाएँ ख़ारिज कर दी और याचिकाकर्ताओं के सारे तर्कों को ख़ारिज कर दिया और वर्ष 2016 में रुपए 500/-- व 1000/-- मूल्य वाले नोटों का चलन रोकने के लिए सरकार के विमुद्रीकरण/नोटबंदी के फ़ैसले को सही ठहराया है। उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि नोटबन्दी से पहले केंद्र सरकार और भारतीय रिज़र्व बैंक के बीच लगभग छः माह तक विचार विमर्श हुआ था और नोटबंदी का फ़ैसला लेते समय अपनाई गई प्रक्रिया में कोई कमी नहीं थी और भारतीय रिज़र्व बैंक ने निर्णय लेने से पहले सभी प्रासंगिक कारकों पर विचार किया था। इस संबंध में विमुद्रीकरण का निर्णय लेने की प्रक्रिया केवल इसलिए दोषपूर्ण नहीं हो सकती क्योंकि इसका प्रस्ताव सरकार द्वारा भारतीय रिज़र्व बैंक को दिया गया था। संविधान पीठ ने यह भी स्पष्ट किया कि न तो यह निर्णय अतार्किक था और न ही आनुपातिकता के सिद्धांत के विरुद्ध था। यही नहीं, न्यायालय ने बंद नोटों को बदलवाने के लिए दिए गए 52 दिनों के समय को भी पर्याप्त माना। केंद्र सरकार ने नोटबंदी की जो तात्कालिक कारण बताए थे उनके बारे में याचिकाकर्ताओं के तर्कों को ख़ारिज करते हुए न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि यह प्रासंगिक नहीं है कि ये उद्देश्य हासिल हुए या नहीं और केवल इस कारण से कि केंद्र सरकार के वर्तमान फ़ैसले से कुछ नागरिकों को कठिनाई का सामना करना पड़ा इसे खराब क़ानून नहीं कहा जा सकता है। इसलिए वर्ष, 2016 के विमुद्रीकरण की अधिसूचना को रद्द करने की कोई ज़रूरत नहीं है।

इस प्रकार उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णय द्वारा वर्तमान विमुद्रीकरण/नोटबंदी से जुड़े सभी क़ानूनी आपत्तियों पर विराम लगा दिया है। जब उच्चतम न्यायालय कोई निर्णय देता है तो देश के लिए वह क़ानून बन जाता है और फिर देश के सारे न्यायालय उस क़ानून का पालन करने के लिए बाध्य होते हैं। असहमति पूर्ण निर्णय केवल एक अपील होती है कि न्यायालय में भविष्य में कभी उस क़ानून की विचारोत्तेजक विवेचना, उस पर गौर करेगी।

❑

प्रो. (डॉ.) राकेश कुमार सिंह

स्टेल्थिंग (Stealthing) का कार्य : मुद्दे और चुनौतियाँ

प्रस्तावना

सेक्स मानवीय जीवन का एक अहम हिस्सा है, यद्यपि समय, काल, परिस्थितियों के अनुसार इसके अपने अलग-अलग मायने निकाले गए हैं। प्राचीन काल में इसे ज्यादातर विवाह के पश्चात् पति-पत्नी के बीच के संबंध तक ही सीमित माना गया था और सेक्स ज्यादातर वंश को आगे बढ़ाने के लिए किया जाता रहा है और उस काल में गृहस्थ आश्रम अर्थात् विवाह को एक संस्कार के रूप में माना गया था और सेक्स को नियंत्रित करने का यह साधन भी था। समाज को आगे बढ़ाने में इसकी अहम भूमिका रही है।

लेकिन आधुनिक समाज में इसके अनेक आयाम देखने को मिलते हैं। सेक्स एक शारीरिक सुख का साधन ही मात्र नहीं है। यहाँ तक की मेडिकल साइंस ने साबित किया है कि सेक्स व्यक्ति के हाई ब्लड प्रेशर को कट्रोल करता है, शरीर में अत्यधिक कैलोरिज को बर्न करने में भी मददगार होता है, शरीर की माँसपेशियों को भी मजबूती प्रदान करता है आपके शरीर की रोग-प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने में भी मदद करता है। पुरुषों में प्रोटेस्ट ग्लैंड में कैंसर होने की संभावना कम हो जाती है। सेक्स से शरीर स्वस्थ रहता है साथ ही दिमाग भी स्वस्थ रहता है और सोचने-समझने की शक्ति अन्य से ज्यादा होती है और सभी कामों को अच्छे से करने को प्रेरित करती है।

भावनात्मक रूप से भी सेक्स का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। सेक्स के दौरान आप दूसरे पार्टनर से भावनात्मक रूप में जुड़ जाते हैं और भी उसी के साथ कस्मे-वादे, जीने-मरने की बातें होती हैं। मनोविज्ञानिक रूप से भी सेक्स से मानसिक दबाव कम होता है, काम के बोझ को हल्का करता है। आजकल के भागदौड़ भरे जीवन की चिंताओं को भी कम करता है साथ ही अच्छी नींद को भी लाने में मदद करता है।

स्टेल्थिंग की परिभाषा

स्टेल्थिंग सेक्स के दौरान गुप्त रूप से कंडोम को हटाने की क्रिया है जब दूसरा व्यक्ति केवल कंडोम के साथ यौन संबंध बनाने के लिए सहमत होता है और फिर भी सोचता है कि कंडोम जगह पर है।

The of Stealthing is, “Non-consensual condom removal or is the practice of a man removing a condom during sexual intercourse without consent, when his sex partner has only consented to condom-protected sex.”

अर्थात् एक पार्टनर ने सुरक्षित सेक्स के लिए अपनी सहमति दी थी लेकिन दूसरे पार्टनर ने कंडोम हटाकर इसका उल्लंघन किया है और सेक्स को असुरिक्षत बना दिया। लेकिन यह भी स्पष्ट है कि यदि आपसी सहमति से सुरक्षा कवच (कंडोम) हटाया गया है तो यह स्टेल्थिंग की श्रेणी में नहीं आएगा। स्टेल्थिंग हमेशा बिना सहमति के कंडोम के हटाने को कहते है।

अंतरराष्ट्रीय स्थिति : सन् 2021 में अमेरिका की कैलिफौनिया से खबर आयी स्टेल्थिंग को वहाँ अवैध घोषित कर दिया गया है। इसके पीछे यह कहा गया कि अमेरिकी सांसद क्रेस्टिना कार्सिया ने इसे बैन कराने के लिए 4 सालों तक संघर्ष किया। सन् 2016 व 2017 में इन्होंने इसके संबंध में बिल को प्रस्तुत किया। 2021 में भी न्यूजीलैंड ने अपने पहले इस तरह के मामलों में अपराधी को सजा दी। इस वाद में अभियुक्त जेसी कम्पोस को सेक्स वर्कर के साथ रेप के मामले में 3 साल और 9 महीने की सजा का दोषी माना गया। केनेडा में स्टेल्थिंग और सहमति को लेकर उनके जजों के बीच विवाद चल रहा है।

कोलंबिया जर्नल ऑफ जेंडर एंड लॉ में प्रकाशित एक लेख में, एलेक्जेंडा ब्रोडस्की ने पीड़ितों के अनुभवों, क़ानूनी निहितार्थो और गैर-सहमति वाले कंडोम हटाने के क़ानूनी तरीकों का वर्णन किया। कोलंबिया लॉ स्कूल की प्रोफेसर सुजैन गोल्डबर्ग का कहना है कि स्टेल्थिंग करने की प्रथा संभवतः नई नहीं है, लेकिन इंटरनेट पर पुरुषों के बीच इसका प्रचार-प्रसार नया है। बेल्जियम की पत्रकार हेलेन डेब्रुइन ने 2017 में इस बात पर जोर दिया कि मीडिया को स्टेल्थिंग एक 'नई सेक्स प्रवृत्ति' के रूप में संदर्भित नहीं करना चाहिए जैसे कि यह एक हानि रहित सनक थी, बल्कि यह स्पष्ट करना चाहिए कि यह 'दुरूपयोग का एक रूप' है।

सन् 2019 में, एक अमेरिकी अध्ययन में पाया गया कि सर्वेक्षण में जिसमें 21 से 30 वर्ष की महिलाओं को शामिल किया गया था, इसमें शामिल 12 प्रतिशत युवा महिलाओं ने स्टेल्थिंग का अनुभव किया है। जबकि 2019 के ऑस्टलियाई अध्ययन पर प्रतिक्रिया देने वाली तीन में से एक महिला और पाँचवें समलैंगिक पुरुष को स्टेल्थिंग किया गया था।

स्टेल्थिंग करना एक भ्रामक, बिना सहमति का कार्य है जो इग्लैंड, जर्मनी, स्विट्जरलैंड, न्यूजीलैंड और कनाडा सहित कई देशों में अवैध है। इसे रेप की श्रेणी में या सैक्सुअल एसाल्ट के रूप में माना जाता है। इस प्रकार, यह एक प्रकार का व्यवहार है जिसे स्वस्थ रिश्ते में कभी भी बर्दाश्त नहीं किया जाना चाहिए।

भारत में स्थिति

सन् 2013 में निर्भया केस के वाद क्रिमिनल लॉ में काफी बदलाव किए गए, यहाँ तक कि कुछ दिनों पूर्व पुराने क्रिमिनल लॉ की जगह भारत में तीन क्रिमिनल लॉ में सुधार हेतु बिल संसद में पेश किया गया है। इन सभी में रेप लॉ में काफी बदलाव किए गए हैं। इस

संबंध में जस्टीस वर्मा कमेटी की भी काफी सुझाव थे। उक्त कमेटी के एक सदस्य प्रोफेसर मिंनल सतीश ने कहा कि 'stealthing would, technically, amount to rape in India if the consent was conditional on the man wearing a condom'.

उल्लेखनीय है कि बच्चों में यौन संबंध का क्रेज बढ़ रहा है। प्रत्येक तीन केस में एक केस जहाँ बच्चे की उम्र 13-18 के बीच हैं और वे सहमति से यौन संबंध स्थापित कर लेते हैं। बाद में उसके माता-पिता के असहमति होने पर वे बच्चों पर रेप, किडनैपिंग इत्यादि का चार्ज लगा देते हैं। भारत में पास्को एक्ट आने के बाद इस तरह से केस में सजा काफी कठोर कर दी गई है। ज्यादातर केस में माता-पिता या पुलिस लड़की को मेडिकल परीक्षण के लिए ले जाते है। यहाँ पर लड़की को विधिक राय की जरूरत होती है और उसे यह नहीं पता होता है कि लड़की चाहे तो मेडिकल परीक्षण के लिए मना कर सकती है। भारत में यूथ के सेक्स को कोई विधिक मान्यता नहीं दी गई है।

कई लोग स्टेल्थिंग को यौन उत्पीड़न का एक रूप मानते हैं। ऐसा इसलिए है कि हम कंडोम के साथ यौन संबंध बनाने के लिए सहमत होते हैं, तो ऐसी सहमति केवल संरक्षित संभोग तक ही सीमित रहती है। कंडोम को हटाने का मतलब है कि आपने खुद को अवांछित गर्भावस्था या एसटीआई से बचाने की क्षमता खो दी है और इसलिए आपकी इच्छा के विरुद्ध आपके साथ कुछ हो रहा है।

स्टेल्थिंग के दुष्परिणाम : भारत में स्टेल्थिंग का शिकार ज्यादातर वैश्यावृति से जुड़ी महिलाएँ होती हैं। लेकिन आजकल हर वर्ग के लोग इसके शिकार हो रहे हैं खासकर युवा वर्ग। मनोवैज्ञानिक संकट, शर्म की भावना और विश्वास की हानि के अलावा कंडोम के बिना सेक्स असुरक्षित यौन संबंध है जो प्रभावित व्यक्ति के लिए शारीरिक समस्याएँ पैदा कर सकता है, (victims are exposed to potential sexually transmitted infections (STIs), जिसके परिणाम निम्न हो सकते हैं :

अवांछित गर्भ : भारत में अनचाहा गर्भ एक गंभीर बीमारी की तरह उभर कर आ रहा है और इसका ज्यादातर शिकार किशोरावस्था की उम्र के बच्चे हो रहे हैं जिन्हें सेक्स के बारे में कोई जानकारी नहीं है। लेकिन सोशल मीडिया के बढ़ते चलन के कारण वे इसके प्रति आकर्षित हो रहे हैं और इसका शिकार बन रहे हैं। अभी हाल में ही भारतीय न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि विवाहित महिलाओं के साथ-साथ अविवाहित महिलाओं को भी 24 माह के गर्भ को नष्ट करने की अनुमति दी जा सकती है। अनचाहा गर्भ अत्यधिक भावनात्मक संकट का कारण बन सकता है, साथ ही इससे कई प्रकार की वित्तीय समस्याएँ भी पैदा हो सकती हैं जिसके लिए बहुत से लोग पहले से ही तैयार नहीं होते हैं।

एसटीआई (Sexually transmitted infections) : एसटीआई से संक्रमित होना स्टेल्थिंग का एक संभावित परिणाम हैं। कंडोम, बाहरी (पुरुष) और आंतरिक (महिला) दोनों, एकमात्र गर्भनिरोधक तरीका है जो हमें अधिकांश एसटीआई से बचाने में मदद कर सकता

है। इसलिए जब कोई स्टेल्थिंग का अभ्यास करता है तो वह जानबूझकर या अनजाने में दूसरे व्यक्ति को एसटीआई दे सकता है। सबसे आम एसआईटी में शामिल हैं :

क्लैमाइडिया, सूजाक, ह्यूमन पेपिलोमावायरस, सिफलिस, माइकोप्लाजमा जेनिटलियम, ट्राइकोमोनिएसिस, एचआईवी/एड्स, दाद, हेपेटाइटिस, कन्टेजियोसम इत्यादि।

हालाँकि अधिकांश एसटीआई का इलाज प्रभावी ढंग से किया जा सकता है, लेकिन इसकी चपेट में आने से अभी भी हमारे स्वास्थ्य पर गहरा असर पड़ सकता है। अगर हम सोचते है कि हम संरक्षित यौन संबंध बना रहे हैं, तो शायद हमें एसटीआई के लिए परीक्षण कराने की आवश्यकता महसूस नहीं होगी और निश्चित होकर यौन संबंधों का आनंद लंबे समय तक ले सकते हैं।

स्टेल्थिंग को बढ़ावा देने वाले कारक : हालाँकि इस संबंध में कोई स्पष्ट मापदंड नहीं है कि लोग ऐसा करना क्यों पसंद करते हैं। लेकिन आज सोशल मीडिया या अन्य पोर्न साइट का इस्तेमाल ज्यादातर युवा कर रहे हैं, ऐसी स्थिति में वे ऐसे ही किसी तरह इसको करके आनंद लेना चाहते हैं। हो सकता है कि हम पहले किसी ऐसे व्यक्ति के साथ रहे हों जिसने कहा हो कि कंडोम के बिना सेक्स करना आनंदायक होता है। यह पुरुषों द्वारा स्टेल्थिंग का आम कारण है।

पुरानी धारणाओं के अनुसार पुरुष बगैर किसी सुरक्षा के यौन संबंध बनाने के दौरान अपनी मर्दानगी को भी साबित करना चाहता है। शायद यह बड़ा कारक है।

क्या स्टेल्थिंग गैरकानूनी है!

दुनिया के अन्य विकसित थोड़े से देशों में इग्लैंड, अमेरिका कनाडा, जर्मनी, न्यूजीलैंड और स्विटरलैंड सहित कई देशों में स्टेल्थिंग करना गैर-क़ानूनी है क्योंकि इसे बलात्कार या यौन हिंसा का एक रूप माना जाता है। उदाहरण के लिए, कनाडा ने सशर्त सहमति की अवधारणा के अंतर्गत स्टेल्थिंग के दोषी में पाए गए पुरुषों पर सफलतापूर्वक मुकदमा चलाया है।

भारत में इसको लेकर बातचीत भी काफी कम होती है। सेक्स अपने आप में वर्जित विषय माना जाता है। भारत में महिला मामलों की जानकार फलैविया ऐनिस का मानना है कि भारत में सेक्स का क़ानून ब्लैक एंड व्हाइट में है। यह ऐसे किसी गूढ़ मामले में नहीं जाता है जहाँ कि स्टेल्थिंग को भी कोई कृत्य माना जाए।

कई अनसुलझे सवाल

- क्या इस अपराध में पति-पत्नी को भी शामिल किया जाएगा?
- यदि इस अपराध को सिद्ध करना पड़े, तो क्या वर्तमान साक्ष्य अधिनियम या दंड प्रक्रिया संहिता के वर्तमान प्रावधान प्र्याप्त है या फिर इसमें अमूलचूल परिवर्तन की आवश्कता है?
- क्या हमारा समाज इसके प्रति जागरूक है या हम इस अपराध को तुच्छ लैंगिक संबंध के श्रेणी में लाना चाहते हैं?

- क्या भारत में सेक्स शिक्षा माध्यमिक शिक्षा के स्तर दी जानी अनिवार्य की जानी चाहिए?
- क्या इसको दृष्टिगत रखते हुए पास्को अधिनियम में भी संशोधन किया जाना चाहिए?
- क्या इसको वैधानिक दर्जा मिलने से स्त्रियों द्वारा पुरुषों के प्रति यह एक यंत्रणा यंत्र के रूप में इसका इस्तेमाल किया जाएगा जैसे धारा 498-ए इत्यादि।

भारत में भी स्टेल्थिंग का चलन बढ़ रहा है, खासकर मेट्रो शहरों में। लेकिन भारत जैसे देश में स्टेल्थिंग के बारे में चर्चा काफी सीमित है। शायद इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि भारत में सेक्स अपने आप में एक वर्जित विषय है। इस संबंध में क़ानून में स्पष्ट कोई प्रावधान नहीं है। लेकिन समय आ गया है कि अब इस पर स्वस्थ चर्चा हो और आमलोग को इसके प्रभाव से परिचित कराया जाए।[1]

निष्कर्ष

भारत में स्टेल्थिंग को लेकर अभी भी असमंजस्य की स्थिति बनी हुई है, क्योंकि भारत में अभी तक इस प्रकार का कोई भी विधिक पूर्व निर्णय नहीं है, न ही कोई स्टेटीकल रिसर्च उपलब्ध है जिसके आधार पर इसकी वैधानिकता व अवैधानिकता के बारे में कुछ कहा जा सके। हम सेक्स को ज्यादातर पर्दे के बाहर लाना नहीं चाहते हैं न ही इसके विषय में आपस में मित्रों के साथ, परिवार में, शिक्षण संस्थानों में, गरुजनों से या बड़े बुजुर्गों से इस संबंध में बात करने का विचार भी नहीं लाते हैं। जागरूकता के अभाव में कई लोग इसका शिकार हो रहे हैं। लेकिन इसे वैधानिक दर्जा देने से पहले संहिता विधि, साक्ष्य विधि और अपराध प्रक्रिया संहिता पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। क्योंकि अपराध का पूरा सर्किल सहमति पर ही टिका है जिसे कोर्ट में साबित किया जाना है। जरूरत इस बात की है कि पालिसी निर्माता इस संबंध में ध्यान आकर्षित करे और कम-से-कम एक विधायन इसके रोकथाम के लिए अतिशीघ्र पारित करे जिससे कि समय रहते इस बढ़ते खतरे पर नियंत्रण पाया जा सके।

❑

लता रानी चौहान

प्रतिष्ठित समाज की कुत्सित व संकीर्ण मानसिकता का धुंधला चेहरा : कन्या भ्रूण हत्या

प्रकृति ने जन्म के साथ ही हमें कुछ अधिकार प्रदान किए हैं जिन्हें हम मानव अधिकार कहते हैं। यदि देखा जाए तो मानव अधिकार वह अधिकार है जो मनुष्य का साथ जन्म से लेकर मृत्यु तक देते हैं।

जीवन के प्रकार

जीव जंतु, पेड़ पौधे व मनुष्य जीवन के तीन प्रकारों में माने जाते हैं परंतु मानव इन सभी में उच्च कोटि का जीव माना जाता है क्योंकि उसके पास विस्तृत और समृद्ध मस्तिष्क होता है जिससे वह विभिन्न प्रकार के विचारों की ओर आकर्षित होता है और नित नए प्रकार के विचारों को संसार के समक्ष प्रस्तुत करता रहता है और साथ ही भूख से मुक्ति दिलाने वाले अधिकारों को मानव अधिकार कहा जाता है, व्यक्तित्व को निखारने और विकास के लिए मानव अधिकार अत्यावश्यक है। जब से पृथ्वी पर सभ्यता का विकास हुआ है तब से प्रकृति द्वारा यह अधिकार मनुष्य को प्रदान किए गए हैं।

मान्यता

भारत में मानव अधिकारों का जन्म वैदिक काल से पूर्व का माना जाता है। यदि आधुनिक काल की बात करें, तो यह 1215 में इंग्लैंड में मैग्नाकार्टा द्वारा प्रदत्त माने जाते हैं। एक बड़ी शिला पर इनको लिखवाया गया था, तदुपरांत 1789 में फ्रांस की क्रांति के समय इनकी विधिवत् घोषणा की गई थी। यू.एन.ओ ने 10 दिसंबर, 1948 को इन्हें मान्यता प्रदान की थी।

मुख्य मानव अधिकार

1. माँ के गर्भ धारण के साथ ही बच्चे को जन्म लेने का अधिकार
2. नागरिक राष्ट्रीयता पाने का अधिकार
3. टीकाकरण का अधिकार
4. गरिमा पूर्ण जीवन का अधिकार
5. आधारभूत मूल आवश्यकताएँ प्राप्त करने का अधिकार

6. किसी भी प्रकार के शोषण के ख़िलाफ़ बोलने का अधिकार
7. गुलामी से मुक्ति का अधिकार
8. शिक्षा का अधिकार
9. राजनीतिक अधिकार
10. सामाजिक अधिकार
11. सांस्कृतिक जीवन जीने का अधिकार

इन सभी के अतिरिक्त अन्य विभिन्न प्रकार के अधिकार मानव अधिकारों की सूची में आते हैं जिन्हें हमारे संविधान द्वारा और देश के उच्चम न्यायालय द्वारा मान्यता प्रदान की गई है और अब इन अधिकारों का दायरा बहुत विस्तृत हो चुका है।

परिभाषा

प्रत्येक मनुष्य को जन्म के साथ कुछ नैसर्गिक अधिकार प्राप्त हो जाते हैं जिनसे किसी भी परिस्थिति में उसे वंचित नहीं किया जा सकता है मानवीय गरिमा के साथ जीने एवं अपने विकास के लिए आवश्यक अधिकारों को मानव अधिकारों की संज्ञा दी जा सकती है।

अभी तक हम सभी यह तो समझ ही चुके हैं कि मानव अधिकार किन्हें कहते हैं, प्रकृति से मिले हुए अधिकारों में मेरी दृष्टि से देखा जाए तो जन्म लेने का अधिकार प्राणियों के लिए सर्वोत्तम अधिकार है, क्योंकि बाकी सभी अधिकारों का प्रयोग हम तभी तो कर पाएँगे जब स्वयं जीवित रहेंगे, यह अधिकार हमसे कोई भी नहीं छीन सकता स्वयं हमारे माता-पिता भी नहीं।

परंतु आधुनिकता की दौड़ में जहाँ जनसंख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और दूसरी ओर वंश वृद्धि की चाहत और एक या दो से अधिक बच्चों की परवरिश ना कर पाने की अभिभावकों की विवशता ने एक ऐसे अपराध को जन्म दिया है, जिसे कोई भी बुद्धिजीवी अमानवीय ही मानेगा।

पुत्री के जन्म को प्राचीन काल से ही शुभता का प्रतीक नहीं माना जाता है परंतु उस समय पुत्री के साथ किसी भी प्रकार का अमानवीय व्यवहार नहीं किया जाता था। उन्हें पुत्र के समान ही अधिकार प्राप्त थे। शिक्षा प्राप्त करना, सम्मान और परिवार में उनका उचित स्थान निर्धारित था। शास्त्रों की माने तो यह भी कहा जाता है ''यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता'' अर्थात् जहाँ नारी का सम्मान होता है, वहाँ देवता निवास करते हैं परंतु आधुनिक काल में हम इन मंत्रों का महत्त्व कहीं भूल चुके हैं। यह शब्द कुछ विशिष्ट शब्द बनकर ही रह गए बात-बात पर नारी का अपमान करना पुरुष अपना अधिकार समझता है। घृणित अपशब्दों का प्रयोग कर नारी को ना सिर्फ अपमानित करता है अपितु उसके हृदय को भी आहत करता है। सदैव इस अहम में जीता है कि नारी का स्थान इस संसार में सदैव निकृष्ट हैं, जबकि सत्य से वह स्वयं परिचित है।

अब तो वह उससे जीवन जीने का अधिकार भी छीन लेना चाहता है। माँ के गर्भ में कन्या का जीवन हरण करने का जघन्य अपराधिक कार्य जो आज के परिवेश में किया जा रहा है, हमारे समाज की संकीर्ण मानसिकता को ही तो दर्शाता है।

कन्या भ्रूण हत्या के कारण

1. हमारा समाज सदैव से ही पुरुष प्रधान समाज रहा है अतः लड़कों के जन्म को ही सामाजिक व्यक्ति प्राथमिकता देते हैं और लड़कियों के जन्म पर अवरोध उत्पन्न कर उनकी गर्भ में ही हत्या कर दी जाती है।
2. समाज के कुछ संकीर्ण मानसिकता वाले कुल या परिवार अपनी वंश वृद्धि के लिए लड़कों को ही मान देते हैं। उनका कथन है कि बेटी तो पराया धन होती है। उससे हमारा वंश थोड़ी ना आगे बढ़ेगा।
3. लड़की की शादी में दहेज जैसी कुप्रथा भी पारंपरिक रूप से निभाई जाती है जिसके चलते भी परिवार कई बार गर्भ में ही कन्या की हत्या करा देते हैं।
4. समाज के कुछ मूर्ख व्यक्तियों का मानना है कि बेटा ही परिवार की रक्षा कर सकता है जीवन भर उनके साथ रहकर उनकी देखभाल करेगा यह सिर्फ उनका एक भ्रम है।
5. परिवार की बुजुर्ग महिलाएँ भी अपने सम्मान और प्रतिष्ठा के अंहकार में बेटियों की जन्म से पहले ही हत्या करा देती हैं।

कन्या भ्रूण हत्या के प्रभाव

पिछले तीन दशकों में बड़े पैमाने पर कन्या भ्रूण हत्या के कुप्रभाव स्पष्ट दिखाई देते हैं। जो गिरते लिंगानुपात और विवाह योग्य लड़कों के लिए वधुओं की कमी के रूप में सामने आए हैं। इसके अलावा जनसंख्या विज्ञानी आगाह करते हैं, कि अगले 20 सालों में चूँकि विवाह योग्य महिलाओं की संख्या में कमी आएगी, इसलिए पुरुष कम उम्र की महिलाओं से विवाह करेंगे जिससे जन्म दर में वृद्धि के कारण जनसंख्या वृद्धि की दर और भी ऊँची हो जाएगी और यौन कर्मी के तौर पर अधिक महिलाओं का शोषण होने की संभावना है। यौन शोषण और बलात्कार जैसे अपराधों को और अधिक बढ़ावा मिलेगा। पिछले कुछ सालों में यौन अपराधों का तेजी से बढ़ता ग्राफ लिंगानुपात के परिणामों से ही जुड़ा हुआ है।

कन्या भ्रूण हत्या को रोकने के उपाय

- कन्या शिशु हत्या एक अपराध है गर्भावस्था में किसी भी महिला का लिंग परीक्षण करना क़ानूनन अपराध है इसे रोकने के लिए सभी हॉस्पिटलों को इससे जुड़े नियमों का सख़्ती से पालन करना चाहिए। जो भी चिकित्सक ऐसे धृणित कार्य करते हैं, उनके ख़िलाफ़ कठोर कार्यवाही की जानी चाहिए।
- महिलाओं को स्वयं इसके लिए पहल करनी होगी। यदि परिवार का कोई भी सदस्य उनसे

लिंग परीक्षण के लिए दबाव बनाता है तो सख़्ती से मना करना चाहिए। ना मानने पर पुलिस को सूचना देनी चाहिए।

- समाज में शिक्षा का प्रसार किया जाना चाहिए ताकि प्रत्येक परिवार बेटी-बेटा में भेद को बुलाकर अपनी जिम्मेदारी निभा सके और अपने बच्चों को सर्वगुण संपन्न बना सके।
- समाज के मध्य से दहेज जैसी कुप्रथा का भी निवारण करना चाहिए जिससे किसी भी माँ-बाप को अपनी बेटी की हत्या करने का पाप ना करना पड़े और ना ही वह बेटी को वह कोई बोझ समझे।
- सरकार द्वारा समाज को जागरूक करने के लिए कड़े क़दम उठाने चाहिए जिससे वह बेटी को बोझ नहीं गर्व समझे।

कन्या भ्रूण हत्या जैसे अपराध से जुड़े क़ानूनी प्रावधान

भारतीय दंड संहिता, 1860 के तहत प्रावधान : भारतीय दंड संहिता की धारा 312 कहती है जो कोई भी जान-बूझकर किसी महिला का गर्भपात करता है, जब तक कि कोई महिला सदिच्छा से नहीं कराती है, जब तक गर्भावस्था का जारी रहना महिला के जीवन के लिए ख़तरनाक ना हो, तो इस कारण उसे 7 साल की सजा दी जाएगी। इसके अतिरिक्त महिला की सहमति के बिना गर्भपात धारा 313 और गर्भपात की कोशिश के कारण महिला की मृत्यु धारा 314 दंडनीय अपराध बनाता है। धारा 315 के अनुसार माँ की जीवन की रक्षा के प्रयास को छोड़कर अगर कोई बच्चे के जन्म से पहले ऐसा काम करता है जैसे जीवित बच्चे के जन्म को रोकना, अजन्मे बच्चे की हत्या करना, धारा 316, नवजात शिशु को त्याग देना धारा 317, बच्चे के मृत शरीर को छुपाना या इसे चुपचाप नष्ट करना धारा 318, हालाँकि भ्रूण हत्या या शिशु हत्या शब्दों का विशेष तौर पर इस्तेमाल नहीं किया जाता। भ्रूण हत्या को आईपीसी धारा 315 के तहत अपराध माना गया है और इसके लिए सजा का भी प्रावधान है। 1964 में स्वास्थ्य मंत्रालय ने एक समिति का गठन किया। शांतिलाल शाह नाम से गठित इस समिति को महिलाओं द्वारा की जा रही गर्भपात की क़ानूनी वैधता की माँग के मद्देनजर महिला के मानव अधिकार के मुद्दों पर विचार करने का काम सौंपा गया। 1971 में संसद में गर्भ की चिकित्सकीय समाप्ति अधिनियम, 1971 (एम.पी.टी. एक्ट) पारित हुआ। जो 1 अप्रैल 1972 को लागू हुआ और उसे उक्त अधिनियम के दुरुपयोग की संभावनाओं को खत्म करने के उद्देश्य से गर्भ की चिकित्सकीय समाप्ति संशोधन अधिनियम 2002 के द्वारा 1975 और 2002 में संशोधित किया गया। यह केवल 8 धाराओं का छोटा सा अधिनियम है। यह अधिनियम महिला की निजता के अधिकार, उसके सीमित प्रजनन के अधिकार, उसके स्वस्थ बच्चे की जन्म देने के अधिकार, उसका अपने शरीर से संबंध में निर्णय लेने के अधिकार की स्वतंत्रता की बात करता है लेकिन कुछ बेईमान लोग केवल कन्या भ्रूण को गिरा कर इसका बेजा फायदा उठा रहे हैं।

कन्या भ्रूण हत्या निवारण अधिनियम : (1870 का अधिनियम)

ब्रिटिश भारत में पारित एक विधायी अधिनियम था। जिसका उद्देश्य कन्या शिशु की हत्या को रोकना था। यह शुरू में था, लेकिन केवल अवध उत्तर पश्चिमी प्रांतों और पंजाब के क्षेत्रों में लागू था लेकिन अधिनियम के मुताबिक गवर्नर जनरल अपने विवेक अनुसार ब्रिटिश राज के किसी भी अन्य चले या प्रांत में भी यह क़ानून लागू कर सकते थे।

कन्या भ्रूण हत्या एक सामाजिक कलंक

अंततः इतना ही कहना चाहूँगी कि कन्या भ्रूण हत्या एक सामाजिक कलंक है। हमारे समाज में महिलाओं की सामाजिक सुरक्षा ना होने के कारण भी लिंगानुपात के अंतर की समस्या उत्पन्न हो रही है। अतः हमें महिलाओं को सक्षम बनाने के साथ-साथ उन्हें आत्म रक्षा व आत्म-निर्भर करने के लिए जागरूक करने की भी आवश्यकता है। महिला सशक्तिकरण के लिए केंद्र व राज्य सरकार द्वारा चलाई जा रही विभिन्न योजनाओं को कार्यान्वित कर महिलाओं की शिक्षित एवं स्वाबलंबी बनाने की भी समस्या का काफी हद तक निदान हो सकता है। शिक्षण संस्थाओं में स्थापित महिला सेलो को सक्रिय करके और युवाओं को भी इस अभियान में सक्रिय योगदान देने से भी यह कार्य किया जा सकता है और युवा वर्ग भी कन्या भ्रूण हत्या जैसी कुरीतियों को समाप्त करने में सक्रिय योगदान दे सकता है।

❑

सत्यम चंसोरिया

कैंसर उपचार में रोगी अधिकार : कैंसर की रोकथाम और नियंत्रण के लिए प्रभावी क़ानून की आवश्यकता

कैंसर भारत में एक महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक स्वास्थ्य चुनौती है जिसमें अनुमानित 11.6 लाख नए मामले और केवल वर्ष 2020 में ही 7.84 लाख से अधिक मौतें हुई हैं। भारत में कैंसर उपचार में कई चुनौतियों का सामना करता है जिसमें सस्ती और गुणवत्ता वाली कैंसर देखभाल तक पहुँच की कमी, अपर्याप्त बुनियादी ढाँचे और कुशल स्वास्थ्य पेशेवरों की कमी शामिल है।

इन चुनौतियों से निपटने के लिए, भारत में कैंसर देखभाल में सुधार के लिए विधायन की महती आवश्यकता है। एक व्यापक कैंसर देखभाल क़ानून कैंसर रोगियों की प्रारंभिक पहचान, निदान, उपचार और उपशामक देखभाल के लिए एक रूपरेखा प्रदान करेगा। इस तरह के क़ानून कैंसर रोगियों द्वारा सामना की जाने वाली नियामक और वित्तीय चुनौतियों को भी संबोधित करेंगे, सस्ती कैंसर देखभाल तक पहुँच में सुधार करेंगे और ऑन्कोलॉजी के क्षेत्र में अनुसंधान और विकास को बढ़ावा देंगे। भारत में एक व्यापक कैंसर उपचार क़ानून न केवल कैंसर पीड़ित के बोझ को कम करने में मदद करेगा, बल्कि यह भी सुनिश्चित करेगा कि कैंसर रोगियों को समय पर और प्रभावी उपचार मिले, जिससे उनके जीवन की गुणवत्ता में सुधार हो।

भारत में कैंसर की देखभाल का इतिहास प्राचीन काल से है जब कैंसर के उपचार के लिए विभिन्न पारंपरिक और वैकल्पिक चिकित्सा प्रणालियों का उपयोग किया जाता था। आयुर्वेद, चिकित्सा की पारंपरिक भारतीय प्रणाली, कैंसर को 'अर्बुद' नामक बीमारी के रूप में उल्लेख करती है, जिसका इलाज हर्बल दवाओं और शल्य चिकित्सा हस्तक्षेपों का उपयोग करके किया गया था।

कई प्राचीन भारतीय चिकित्सा ग्रंथों में कैंसर और उनके उपचार का उल्लेख है, जिनमें से कुछ हैं --

1. चरक संहिता

अर्बुदं कडिग्रहितं व्याप्तं वर्तुलं विशालम्।
कठिनं अस्पन्दनं दृष्टं वातपित्तकफोपशमम्।।

2. सुश्रुत संहिता

त्रिदोषविकृतितो वातपित्तकफसंयुतः।
तद्दोषात्कफजः शोफोऽर्बुदोऽन्यस्तु दोषात्पित्तजः।।

3. अष्टांग हृदय

अर्बुदो ग्रन्थिर्वा शोफश्च सर्वे तु दोषजाः।
शोफान्तरं च तद्रूपं निर्विषः पिप्पल्यादिभिः।।

4. भावप्रकाश

अर्बुदं दृष्टमेतेषां विषकृष्णोष्णवातजम्।
कुष्ठहरं तथा पूतिहरं स्वयमात्मार्थदं वै।।

5. राज निघंटु

तुलसी नाम महावीर्या लुङ्गार्बुदकफोपशान्।
अम्बोदरश्चार्बुदः दृश्च तत्र-तत्र निपातनम्।।

आधुनिक भारत ने कैंसर देखभाल और उपचार के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण प्रगति की है। 1941 में मुंबई में टाटा मेमोरियल अस्पताल की स्थापना के साथ, भारत में पहला कैंसर अस्पताल, कैंसर की रोकथाम, प्रारंभिक पहचान और उपचार पर ध्यान केंद्रित करना शुरू कर दिया। आज पूरे भारत में कई विशेष कैंसर अस्पताल और उपचार केंद्र हैं जो सर्जरी, विकिरण चिकित्सा, कीमोथेरेपी, इम्यूनोथेरेपी और लक्षित चिकित्सा जैसे उपचार विकल्पों की एक शृंखला प्रदान करते हैं। इसके अलावा, प्रौद्योगिकी में प्रगति ने अधिक सटीक निदान और व्यक्तिगत उपचार योजनाएँ प्रदान करना संभव बना दिया है।

इस प्रगति के बावजूद, कैंसर भारत में एक प्रमुख स्वास्थ्य चिंता बनी हुई है जिसमें कैंसर का देरी से अनुसंधान और उपचार तक सीमित पहुँच प्रभावी कैंसर देखभाल के लिए महत्त्वपूर्ण बाधाएँ हैं। हालाँकि, आधुनिक भारत में हुई प्रगति कैंसर के ख़िलाफ़ लड़ाई में बेहतर भविष्य की उम्मीद प्रदान करती है।

कैंसर एक जटिल और बहुआयामी मुद्दा है जो चिकित्सा और सरकारी प्रयासों इन दोनों ही क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण चुनौतियाँ पैदा करता है। निश्चित रूप से, हम इन कारकों में से प्रत्येक का सूक्ष्म अध्ययन करेंगे और कैंसर की चुनौतियों को प्रभावी ढंग से संबोधित करने के लिए क़ानून की आवश्यकता एवं उनके प्रभावी अंतर संबंध का भी परीक्षण करेंगे।

चिकित्सा क्षेत्र में, कैंसर का प्रभावी ढंग से मुक़ाबला करने के लिए कई चुनौतियों को संबोधित करने की आवश्यकता है। इनमें उच्च गुणवत्ता वाले कैंसर देखभाल तक पहुँच, किफायती उपचार विकल्पों की उपलब्धता और कैंसर की रोकथाम और उपचार में अधिक शोध की आवश्यकता शामिल है।

कैंसर के निवारण हेतु प्रभावी विधायन द्वारा निम्न कारक विनियमित किए जा सकते हैं --

1. **तंबाकू का उपयोग** : सरकार तंबाकू उत्पादों के उत्पादन, बिक्री और वितरण को विनियमित कर सकती है और तंबाकू के उपयोग को कम करने के लिए तंबाकू विरोधी अभियानों को लागू कर सकती है। वर्तमान सिगरेट और अन्य तंबाकू उत्पाद अधिनियम (सीओटीपीए) भारत में तंबाकू की खपत के मुद्दे को प्रभावी ढंग से संबोधित करने में विफल रहा है।

मुख्य कारणों में से एक क़ानून का कमज़ोर प्रवर्तन है। सार्वजनिक स्थानों पर धूम्रपान पर प्रतिबंध के बावजूद, कई धूम्रपान करने वाले दंड या जुर्माने के डर के बिना सार्वजनिक रूप से धूम्रपान करना जारी रखते हैं। इसी तरह, तंबाकू विज्ञापन और प्रचार पर प्रतिबंध सख्ती से लागू नहीं किए गए हैं और तंबाकू कंपनियाँ अपने उत्पादों को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न विपणन रणनीति का उपयोग करना जारी रखती हैं।

एक अन्य कारण तंबाकू उद्योग का प्रभाव है। तंबाकू उद्योग भारत में एक शक्तिशाली लॉबी है और इसे अपने पक्ष में सरकारी नीतियों को प्रभावित करने के लिए जाना जाता है। इससे सख्त तंबाकू नियंत्रण उपायों को लागू करने में देरी हुई है और मौजूदा नीतियों की प्रभावशीलता कमज़ोर हो गई है।

उच्च जुर्माना और कारावास के साथ सख्त प्रावधानों को लागू करना निश्चित रूप से तंबाकू की खपत के लिए एक निवारक हो सकता है और भारत में इसके प्रसार को कम करने में मदद कर सकता है। इसके साथ ही, प्रवर्तन तंत्र को मजबूत करने और यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि अपराधियों को रोकने के लिए दंड प्रभावी ढंग से लागू किए जाएँ।

2. **पर्यावरण प्रदूषक** : सरकार औद्योगिक गतिविधियों और उत्सर्जन को विनियमित कर सकती है हानिकारक रसायनों और प्रदूषकों के संपर्क को सीमित कर सकती है और वायु, जल और मिट्टी प्रदूषण को कम करने के उपायों को लागू कर सकती है।

भारतीय पर्यावरण संरक्षण अधिनियम कैंसर के मुद्दे को संबोधित करने में बहुत प्रभावी नहीं रहे हैं क्योंकि उनमें कड़े प्रावधानों और पर्याप्त प्रवर्तन तंत्र की कमी है। कई उद्योग पर्यावरणीय मानदंडों का उल्लंघन करना जारी रखते हैं, जिससे हवा, पानी और मिट्टी में जहरीले प्रदूषक निकलते हैं जो कैंसर का कारण बनते हैं।

इस मुद्दे को हल करने के लिए, नए क़ानून में नियामक ढाँचे को मजबूत करने और पर्यावरण मानदंडों का उल्लंघन करने वाले उद्योगों के लिए सख्त दंड लागू करने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। ग़ैर-अनुपालन के लिए जुर्माना और दंड बढ़ाकर, विशेष पर्यावरण अदालतों की स्थापना और निर्णय लेने की प्रक्रिया में सार्वजनिक भागीदारी को बढ़ाकर पर्यावरणीय मामलों के समाधान में हासिल किया जा सकता है। नए क़ानून में प्रदूषण के लिए जिम्मेदार उद्योगों

और व्यक्तियों के लिए कठोर दायित्व के प्रावधान शामिल होने चाहिए। इसे जिला स्तर पर विशेष पर्यावरण अदालतों की स्थापना के माध्यम से लागू किया जा सकता है जो पर्यावरणीय क्षति और प्रदूषण के कारण होने वाले नुकसान से संबंधित मामलों की सुनवाई और समाधान कर सकते हैं।

3. वर्तमान व्यावसायिक जोखिम सुरक्षा अधिनियम कई कारणों से कैंसर के ख़तरे को प्रभावी ढंग से रोकने में विफल रहे हैं। इसका एक मुख्य कारण अधिनियमों के समुचित कार्यान्वयन और प्रवर्तन का अभाव है। कई उद्योग और नियोक्ता सुरक्षा मानदंडों का पालन नहीं करते हैं, और निगरानी और निरीक्षण प्रणाली अक्सर अपर्याप्त होती है।

इसके अलावा, वर्तमान अधिनियमों में कई असंगतिया हैं, जैसे व्यावसायिक ख़तरों से प्रभावित श्रमिकों के लिए मुआवजे के लिए अपर्याप्त प्रावधान, व्यावसायिक स्वास्थ्य जोखिमों के मूल्यांकन और प्रबंधन के लिए स्पष्ट दिशानिर्देशों की कमी और प्रवासी और अनुबंध श्रमिकों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए अपर्याप्त उपाय। इन मुद्दों को हल करने के लिए, नए क़ानून में अधिनियमों के कार्यान्वयन और प्रवर्तन के लिए सख्त प्रावधान शामिल होने चाहिए।

यह एक नियामक निकाय की स्थापना के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है जिसमें सुरक्षा मानदंडों के अनुपालन की निगरानी और प्रवर्तन के लिए पर्याप्त शक्तियाँ और संसाधन निहित हो। नए अधिनियम में व्यावसायिक स्वास्थ्य जोखिमों के मूल्यांकन और प्रबंधन के लिए स्पष्ट दिशानिर्देश भी शामिल होने चाहिए जिसमें जोखिमों की नियमित निगरानी और समीक्षा के प्रावधान शामिल हैं।

इसके अतिरिक्त, नए अधिनियम में मुआवजे का दावा करने के लिए एक सुव्यवस्थित प्रक्रिया के साथ व्यावसायिक ख़तरों से प्रभावित श्रमिकों के लिए पर्याप्त मुआवजे का प्रावधान होना चाहिए। अधिनियम में प्रवासी और अनुबंध श्रमिकों जैसे कमज़ोर श्रमिकों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए उनके प्रशिक्षण, शिक्षा और सुरक्षा उपकरणों और सुविधाओं तक पहुँच के उपायों के साथ प्रावधान भी शामिल होने चाहिए।

4. फसलों और सब्ज़ियों में उर्वरकों, कीटनाशकों और ख़तरनाक दवाओं का अनियमित उपयोग भारत में कैंसर का एक महत्त्वपूर्ण कारण है। इस मुद्दे को नियंत्रित करने के लिए उचित विनियमन और स्पष्ट दिशानिर्देश की कमी है जिसके परिणामस्वरूप यूरिया के साथ दूध का संदूषण भी कई प्रकरणों में होता है।

भारत में उर्वरकों और कीटनाशकों का उपयोग मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण पर इसके प्रभाव के लिए चिंता का कारण रहा है। यह एक ज्ञात तथ्य है कि भारत में उर्वरक उद्योग हमेशा आयातित फॉस्फेट युक्त चट्टान के परिशोधन के लिए आवश्यक प्रक्रियाओं और प्रोटोकॉल का पालन नहीं करता है जिसमें यूरेनियम के अंश हो सकते हैं।

इसके परिणामस्वरूप मिट्टी और पानी में हानिकारक रसायनों और भारी धातुओं का प्रसार हो सकता है, जिससे इन प्रदूषकों के संपर्क में आने वाले लोगों में कैंसर और अन्य स्वास्थ्य

समस्याओं का ख़तरा बढ़ जाता है। नतीजतन, किसानों और उपभोक्ताओं दोनों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए कृषि में उर्वरकों और कीटनाशकों के उपयोग के सख्त नियमों और निगरानी की आवश्यकता है।

पंजाब का कपास बेल्ट इस ख़तरे का एक उदाहरण है। यह क्षेत्र कपास की खेती में कीटनाशकों और कीटनाशकों के उच्च उपयोग के लिए जाना जाता है जिसके परिणामस्वरूप किसानों और उनके परिवारों के बीच कैंसर के मामलों में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। कई अध्ययनों ने मिट्टी, पानी और हवा पर इन रसायनों के हानिकारक प्रभावों और मानव स्वास्थ्य पर परिणामस्वरूप प्रभाव पर प्रकाश डाला है।

यह कृषि में कीटनाशकों और कीटनाशकों के उपयोग को विनियमित करने और किसानों और सामान्य आबादी के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए प्रभावी क़ानून की तत्काल आवश्यकता पर प्रकाश डालता है। यदि हम इस ख़तरनाक स्थिति पर ध्यान नहीं देते हैं और कार्रवाई नहीं करते हैं, तो यह अंततः पूरे राष्ट्र को प्रभावित करेगा।

5. **चिकित्सा उपचार** : सरकार विकिरण चिकित्सा और कीमोथेरेपी सहित चिकित्सा उपचार को विनियमित कर सकती है, यह सुनिश्चित करने के लिए कि वे सुरक्षित और प्रभावी हैं और कैंसर के जोखिम को नहीं बढ़ाते हैं।

समय की माँग है कि हमारे शोध संस्थानों की मदद से स्वदेशी और अधिक शक्तिशाली लेकिन कम हानिकारक रेडियोथेरेपी मशीनों को विकसित किया जाए, ताकि उन्हें पूरे भारत में उपलब्ध कराया जा सके। जनता को बेहतर और किफायती कैंसर उपचार विकल्प प्रदान करने के लिए मौजूदा प्रौद्योगिकियों को नया करना और सुधारना महत्त्वपूर्ण है।

स्वदेशी और कम हानिकारक रेडियोथेरेपी मशीनों के विकास के क्षेत्र में वित्त पोषण और नवाचार को बढ़ावा देने के प्रावधान को नए अधिनियम में शामिल किया जाना चाहिए।

6. **एचपीवी टीकाकरण** : सरकार मानव पेपिलोमावायरस (एचपीवी) के ख़िलाफ़ टीकाकरण को बढ़ावा दे सकती है और सब्सिडी दे सकती है जो कुछ प्रकार के कैंसर को रोक सकती है इसे नए अधिनियम में प्रभावी रूप से अनिवार्य बनाया जाना उचित होगा

7. **स्क्रीनिंग और शुरुआती पहचान** : सरकार कुछ प्रकार के कैंसर, जैसे स्तन और गर्भाशय ग्रीवा के कैंसर के लिए स्क्रीनिंग कार्यक्रमों को लागू कर सकती है ताकि प्रारंभिक चरण में कैंसर का पता लगाया जा सके जब यह अधिक उपचार योग्य हो। इसे नए अधिनियम में प्रभावी रूप से अनिवार्य बनाया जाना उचित होगा।

भारत दुनिया के अन्य हिस्सों में लागू सफल कैंसर देखभाल क़ानूनों और नीतियों से बहुत कुछ सीख सकता है --

1. **जापान का कैंसर नियंत्रण अधिनियम** : यह क़ानून, 2006 में कैंसर नियंत्रण और रोकथाम के उपायों को बढ़ावा देने के लिए लागू किया गया था जिसमें प्रारंभिक पहचान और उपचार शामिल हैं।

2. **ऑस्ट्रेलिया की कैंसर योजना :** यह एक राष्ट्रीय कैंसर नियंत्रण योजना है जिसका उद्देश्य रोकथाम, पहचान, उपचार और अनुसंधान के माध्यम से ऑस्ट्रेलियाई लोगों पर कैंसर के प्रभाव को कम करना है।
3. **संयुक्त राज्य अमेरिका का राष्ट्रीय कैंसर संस्थान अधिनियम :** इस क़ानून ने कैंसर अनुसंधान और प्रशिक्षण का संचालन और समर्थन करने के लिए राष्ट्रीय कैंसर संस्थान (एनसीआइ) की स्थापना की।
4. **यूनाइटेड किंगडम का कैंसर अधिनियम :** यह क़ानून कैंसर उपचार के विज्ञापन को नियंत्रित करता है और कैंसर उपचार के बारे में झूठे दावे करना अपराध बनाता है
5. **कनाडा की कैंसर नियंत्रण रणनीति :** इस रणनीति का उद्देश्य कैंसर की घटनाओं को कम करना और रोकथाम, प्रारंभिक पहचान, उपचार और अनुसंधान के माध्यम से कैंसर के साथ रहने वाले लोगों के लिए जीवन की गुणवत्ता में सुधार करना है।

निष्कर्षतः कैंसर भारत में एक बढ़ता ख़तरा है और यह एक व्यापक नवीन विधायन से इसे संबोधित करने का उचित समय है। वर्तमान नीतियाँ कैंसर के ख़तरे को रोकने में विफल रही हैं, और नए क़ानून की सख्त आवश्यकता है जो कैंसर की रोकथाम, निदान और उपचार पर ध्यान केंद्रित करते हैं। नए अधिनियम में ऐसे प्रावधानों को शामिल किया जाना चाहिए जो तंबाकू नियंत्रण, व्यावसायिक जोखिम, पर्यावरण प्रदूषण और कम हानिकारक रेडियोथेरेपी मशीनों के मुद्दों को संबोधित करते हैं।

भारत अपनी नीतियों में सुधार करने और कैंसर रोगियों को बेहतर देखभाल प्रदान करने के लिए अन्य देशों में सफल कैंसर देखभाल क़ानूनों से सीख सकता है। अनुसंधान और नवाचार के लिए पर्याप्त धन और समर्थन के साथ-साथ नए अधिनियम के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए एक रोडमैप बनाना आवश्यक है। सही क़ानून के साथ, भारत कैंसर की बढ़ती चुनौती से निपट सकता है और इस बीमारी से पीड़ित लोगों को बेहतर देखभाल प्रदान कर सकता है।

❑

डॉ. ज्योति दिवाकर

स्वास्थ्य का अधिकार, एक मौलिक अधिकार : कोविड-19

मानव स्वास्थ्य, किसी भी देश के विकास के महत्त्वपूर्ण मानकों में से एक है। स्वास्थ्य संपूर्ण शरीर तथा मानसिक निरामय की अवस्था को माना जाता है। यह भी सत्य है कि जीवन का अधिकार जो सबसे कीमती मानव अधिकार है और जो अन्य सभी अधिकारों की संभावना को जन्म देता है, एक कल्याणकारी राज्य में यह सुनिश्चित करना राज्य का ही दायित्व होता कि विभिन्न परिस्थिति और नागरिकों को ध्यान में रख कर सुनियोजित ढंग से स्वास्थ्य से सम्बंधित नीतियों का निर्माण और क्रियान्वयन हो। सभी लोगों के लिए स्वास्थ्य के अधिकार का मतलब है कि हर किसी को बिना किसी वित्तीय कठिनाई के स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच होनी चाहिए, स्वस्थ जीवन के लिए हर लोकतांत्रिक देश में चिकित्सा को सर्व सुलभ कराना हर सरकार की सर्वोच्च प्राथमिकता होती है।

कोरोना काल में जहाँ, स्वास्थ्य के ऊपर कई गुना ख़तरा बढ़ा है, सिर्फ भारत ही नहीं, देश विदेश के मानव भी इसकी चपेट में है, पूरा विश्व इस महामारी से जूझ रहा है। इसके चलते पूरी अर्थव्यवस्था विकलांग हो गई है, मानव जीवन के हर पहलू को इस महामारी ने अपनी चपेट में ले लिया है, हस्पिटल से लेकर स्वास्थ्य सेवाओं का हर पहलू बुरी तरह से प्रभावित हुआ है, कोविड 19 ने समूची मानव जाति के जीवन को पलटकर रख दिया। पूरी दुनिया में किसी ने यह कल्पना भी नहीं की होगी कि दुनिया को धाम देने वाली बीमारी आयगी। कोविड 19 महामारी ने भारत में सार्वजानिक स्वास्थ्य व्यवस्था की खामियों को फिर से उजागर कर दिया। भारत का स्वास्थ्य क्षेत्र इस समय कई चुनौतियों से जूझ रहा है। ऐसे में स्वास्थ्य के अधिकार के प्रति मानव की जागरूकता भी बढ़ी है द्य इसी क्रम में यह लेख एक प्रयास है कि क्या स्वास्थ्य का अधिकार (Right to Health), एक मौलिक अधिकार है और आखिर राज्य की नागरिकों के प्रति स्वास्थ्य सेवाओं को लेकर क्या जिम्मेदारियाँ हैं।

अध्ययन की समस्या

स्वास्थ्य का अधिकार मानव के बुनियादी मानव अधिकारों में से एक है, विभिन्न संविधानों ने स्वास्थ्य के अधिकार को विस्तार से परिभाषित किया है। इसके माध्यम से इस अधिकार की सार्वभौमिक सराहना की जाती है लेकिन स्थिति यह दर्शाती है कि हमारे समाज में प्रभावी प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली का अभाव है। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों की प्राथमिक स्वास्थ्य

देखभाल की सुरक्षा के लिए सरकार द्वारा स्वास्थ्य देखभाल की विभिन्न स्वास्थ्य नीतियाँ बनाई गई हैं।

भारत में कमज़ोर सार्वजनिक स्वास्थ्य का एक अन्य महत्त्वपूर्ण कारण एक वैधानिक ढांचे का अभाव है जो स्वास्थ्य के मौलिक अधिकार की गारंटी देता है, स्वास्थ्य के अधिकार को मौलिक अधिकार बनाने की आवश्यकता है -- और इसे क़ानूनी उपकरणों और मानव अधिकारों के ढांचे के भीतर लागू करने की आवश्यकता है। सहकारी संघवाद के भारत के ढांचे के भीतर स्वास्थ्य के अधिकार को लागू करने से जमीनी स्तर पर उन क्षमताओं का निर्माण होगा जहाँ उनकी सबसे ज्यादा ज़रूरत है।

स्वास्थ्य का अधिकार, एक मौलिक अधिकार?

जीवन और स्वास्थ्य एक-दूसरे के पूरक हैं। एक अच्छे स्वास्थ्य के बिना जीवन का अस्तित्व ख़तरे में रहता है और बिना जीवन के स्वास्थ्य के अस्तित्व का सवाल ही नहीं है। स्वास्थ्य के अधिकार का मतलब है, कि हर व्यक्ति की स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच हो, जब और जहाँ उन्हें इसकी आवश्यकता हो और बिना आर्थिक तंगी झेले। भारतीय 1 संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत देश के प्रत्येक नागरिक को जीने का अधिकार है, जीने के अधिकार में स्वास्थ का अधिकार वर्णित हैद्य जिसके तहत देश के प्रति व्यक्ति के स्वास्थ्य ज़रूरतों और जन चिकित्सा को सर्व सुलभ कराना हर सरकार की जिम्मेदारी हैद्य भारतीय संविधान 1 के अनुच्छेद 21 में उच्चतम न्यायालय के विभिन्न निर्णयों के माध्यम से स्वास्थ्य के अधिकार (Right to Health) को एक मौलिक अधिकार माना गया है। यह हम सभी जानते हैं कि संविधान का अनुच्छेद 21, जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार की गारंटी देता है। हालाँकि, भारतीय संविधान के तहत विभिन्न प्रावधान ऐसे है जो यदि बड़े पैमाने पर देखे जाएँ तो वे जन स्वास्थ्य से संबन्धित हैं, परंतु मौलिक अधिकार के रूप में स्वास्थ्य के अधिकार (Right to Health) को अनुच्छेद 21 ही पहचान देता है।

वहीं, भारत के संविधान[2] का अनुच्छेद 47, 'पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को ऊँचा करने तथा लोक स्वास्थ्य का सुधार करने के राज्य के कर्त्तव्य' (Duty of the State to raise the level of nutrition and the standard of living and to improve public health) के विषय में बात करता है।

भारत के संविधान के भाग IV में राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत स्वास्थ्य के अधिकार के लिए एक आधार प्रदान करते हैं। अनुच्छेद 39 (ई) राज्य[3] को श्रमिकों के स्वास्थ्य को सुरक्षित करने का निर्देश देता है, अनुच्छेद 42 राज्य को काम की न्यायसंगत और मानवीय[4] परिस्थितियों और मातृत्व राहत के लिए निर्देशित करता है, अनुच्छेद 47 लोगों के पोषण स्तर और जीवन स्तर को बढ़ाने के लिए राज्य पर एक कर्त्तव्य डालता है। और सार्वजनिक[5] स्वास्थ्य में सुधार के लिए। इसके अलावा, संविधान न केवल सार्वजनिक स्वास्थ्य को बढ़ाने के लिए

राज्य को बाध्य करता है, यह पंचायतों और नगर पालिकाओं को अनुच्छेद 243 जी (11वीं अनुसूची के साथ पढ़ें, प्रविष्टि 23)[6] के तहत सार्वजनिक स्वास्थ्य के अधिकार को मजबूत करने के लिए भी समर्थन करता है।

भारत के संविधान के भाग प्ट में राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत के अलावा, [7] भारत के संविधान में 11वीं और 12वीं अनुसूचियों में स्वास्थ्य संबंधी प्रावधान है। क्रमशः पंचायतों और नगर पालिकाओं के अधिकार क्षेत्र में विषयों के रूप में पाए जा सकते हैं। इनमें स्वच्छ पेयजल, पर्याप्त स्वास्थ्य देखभाल और स्वच्छता (अस्पताल, प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल केंद्र और औषधालयों सहित), परिवार कल्याण को बढ़ावा देना, महिलाओं और बच्चों का विकास, सामाजिक कल्याण को बढ़ावा देना आदि शामिल हैं।

WHO के संविधान[8] का पहला अनुच्छेद उसे हर व्यक्ति को सर्वोच्च स्वास्थ्य उपलब्ध कराने का उद्देश्य देता है और अनुच्छेद 2(ख) और (ज) दुनिया की सरकारों, विशेषज्ञ एजेंसियो से समन्वय एवं ऐसे प्रयासों निरंतरता को सुनिश्चित किया जाए।

मानव अधिकार की सार्वभौम घोषणा 1948

संयुक्त राष्ट्र 9 के 1948, के मानव अधिकार की सार्वभौम घोषणा के अनुच्छेद 25, में कहा गया है की हर किसी होने और अपने परिवार के स्वस्थ्य और कल्याण के लिए पर्याप्त जीवन स्तर का अधिकार है जिसमे रोटी, कपड़ा, मकान और चिकित्सा देखभाल शामिल है।

उच्चतम न्यायालय के प्रमुख मामले/राज्य की जिमेदारियाँ

भारतीय संवैधानिक न्यायशास्त्र में विकास के लिए अनुच्छेद 21 का बहुआयामी दृष्टिकोण महत्त्वपूर्ण है। 1984 के ऐतिहासिक न्यायिक आदेश में संविधान के तहत स्वास्थ्य या स्वास्थ्य के अधिकार की कोई स्पष्ट मान्यता नहीं दी गई, बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ और अन्य में के इस मामले भारत के उच्चतम न्यायालय ने 10 को स्थापित किया कि श्रमिकों के संबंध में, जीवन का संवैधानिक अधिकार स्वास्थ्य का अधिकार शामिल है। जीवन के अधिकार की गारंटी देने वाले अनुच्छेद 21 के तहत स्वास्थ्य के अधिकार की व्याख्या की।

सर्वप्रथम विन्सेंट पनिकुर्लान्गारा बनाम भारत संघ एवं अन्य 1987 AIR 990 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने स्वास्थ्य के अधिकार को अनुच्छेद 21 के भीतर के ही समाहित है इसे सुनिश्चित करना, राज्य की एक जिम्मेदारी है। इसके लिए, अदालत द्वारा इस मामले में बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ [1984, 3 SCC 161 का जिक्र भी किया गया था। इसके बाद, मुख्य रूप से सीईएससी लिमिटेड बनाम सुभाष चंद्र बोस 1992 AIR 573 के मामले में श्रमिकों के स्वास्थ्य के अधिकार के बारे में टिप्पणी करते हुए उच्चतम न्यायालय ने यह नोट किया था कि स्वास्थ्य के अधिकार को संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटीकृत किया गया है, इसे न केवल सामाजिक न्याय का एक पहलू माना जाना चाहिए, बल्कि यह राज्य के नीति निदेशक सिद्धांत के अलावा उन अंतरराष्ट्रीय कोवनेंट्स के अंतर्गत भी आता

है, जिनपर भारत ने हस्ताक्षर किया है।

वहीं, कंज्यूमर एजुकेशन एंड रिसर्च सेंटर बनाम भारत संघ 1995 एआईआर 922 के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह माना गया था कि 11 संविधान के अनुच्छेद 39 (सी), 41 12 और 43 को 13 अनुच्छेद 21 के साथ पढ़े जाने पर यह साफ हो जाता है कि स्वास्थ्य और चिकित्सा का अधिकार एक मौलिक अधिकार है और व्यक्ति की गरिमा की रक्षा करने के साथ-साथ के साथ यह कामगार के जीवन को सार्थक और उद्देश्यपूर्ण बनात है। यहाँ तक अदालत द्वारा मुख्य रूप से कामगार/मजदूरों के स्वास्थ्य के अधिकार को मुख्य रूप से रेखांकित किया गया था, हालाँकि इन मामलों के बाद अदालत ने इस अधिकार को सामान्य रूप से आम लोगों के लिए मौलिक अधिकार के रूप में देखने की शुरुआत कर दी थी।

पंजाब राज्य बनाम मोहिंदर सिंह चावला (1997) 2 SCC 83 के मामले में भी उच्चतम न्यायालय द्वारा यह साफ किया जा चुका है कि स्वास्थ्य सुविधाएँ प्रदान करना यह राज्य की जिम्मेदारी है कि राज्य अपने प्राथमिक कर्त्तव्य के रूप में अपने नागरिकों का बेहतर स्वास्थ्य सुनिश्चित करे। इसमें कोई संदेह नहीं है कि सरकार, सरकारी अस्पतालों और स्वास्थ्य केंद्रों को खोलकर इस दायित्व का निर्वाह करती भी है, लेकिन इसे सार्थक बनाने के लिए, यह जरुरी है यह अस्पताल और स्वास्थ्य केंद्र लोगों की पहुँच के भीतर भी होने चाहिए।

पश्चिम बंग खेत मज़दूर समिति बनाम पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य 1996 SCC (4) 37 के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह साफ किया गया था, कि इस तथ्य को नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता है कि लोगों को पर्याप्त चिकित्सा सेवाएँ प्रदान करना राज्य का संवैधानिक दायित्व है। अदालत ने इस मामले में यह साफ किया था कि एक ग़रीब व्यक्ति को मुफ़्त स्वास्थ्य सहायता प्रदान करने के संवैधानिक दायित्व के संदर्भ में, वित्तीय बाधाओं के कारण राज्य उस संबंध में अपने संवैधानिक दायित्व से बच नहीं सकता है। चिकित्सा सेवाओं के लिए धन के आवंटन के मामले में राज्य की संवैधानिक बाध्यता को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

पंजाब राज्य बनाम राम लुभाया बग्गा (1998) 4 एससीसी 117)। विशेष रूप से, एसोसिएशन ऑफ मेडिकल सुपरस्पेशलिटी अस्पिरंट्स एवं रेसिडेंट्स बनाम भारत संघ के मामले में (2019) 8 एससीसी 607 में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह कहा गया था कि भारत के संविधान का अनुच्छेद 21, प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के अधिकार की रक्षा के लिए राज्य पर एक दायित्व को लागू करता है। इसी मामले में आगे कहा गया कि राज्य द्वारा संचालित सरकारी अस्पताल और उसमें कार्यरत चिकित्सा अधिकारी मानव जीवन के संरक्षण के लिए चिकित्सा सहायता देने के लिए बाध्य हैं।

उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 21 की व्यापक व्याख्या के तहत व्यक्ति को उसके जीवन और सम्मान के लिए बेहतर आनंद सुनिश्चित करने के लिए क़दम उठाने के लिए राज्य पर सकारात्मक दायित्व लागू करने के लिए है।

पिछले वर्ष, अश्विनी कुमार बनाम भारत संघ (2019) 2 एससीसी 636, के मामले में उच्चतम न्यायालय ने जोर देकर कहा था कि ''राज्य यह सुनिश्चित करने के लिए बाध्य है कि ये मौलिक अधिकार (स्वास्थ्य संबंधी) न केवल संरक्षित हैं बल्कि लागू किए गए हैं और सभी नागरिकों के लिए उपलब्ध हैं।''

हाल ही में, तेलंगाना हाईकोर्ट ने अपने एक निर्णय गंटा जय कुमार बनाम तेलंगाना राज्य एवं अन्य [Writ Petition (PIL) No. 75 of 2020, में यह कहा था कि मेडिकल इमरजेंसी के नाम पर नागरिकों के मौलिक अधिकारों को कुचलने की इज़ाज़त नहीं दी जा सकती जो उन्हें संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत दिया गया है। यह मामला COVID 19 की जाँच से जुड़ा था, जोकि सरकार द्वारा लोगों को सिर्फ चिह्नित सरकारी अस्पतालों से ही कोविड 19 की जाँच कराने के सरकारी आदेश से सम्बंधित था।

न्यायमूर्ति एम.एस. रामचंद्र राव और न्यायमूर्ति के.लक्ष्मण की खंडपीठ ने इस आदेश को अपने फ़ैसले में ख़ारिज कर दिया। अदालत ने कहा कि सरकार का यह आदेश, लोगों को जाँच के लिए निजी अस्पतालों में जाने की इज़ाज़त नहीं देता है, जबकि इन अस्पताओं को आईसीएमआर को जाँच करने की अनुमति मिली है। इस मामले में न्यायालय ने अनुच्छेद 21 के तहत स्वास्थ्य के अधिकार की व्याख्या करते हुए अपने लिए चिकित्सीय देखभाल को चुनने के अधिकार के दायरे का विस्तार किया। यह अभिनिर्णित किया गया कि इस अधिकार के अंतर्गत, अपनी पसंद की प्रयोगशाला में परीक्षण करने की स्वतंत्रता शामिल है और सरकार उस अधिकार को नहीं ले सकती है। अदालत ने खास तौर पर कहा कि, राज्य विशेष रूप से व्यक्ति की पसंद को सीमित करके उसे अक्षम नहीं कर सकता है जब एक ऐसी बीमारी की बात आती है जो उसके या उसके परिजनों के जीवन/स्वास्थ्य को प्रभावित करती है।[14]

आयुष्मान भारत बड़ी संभावनाओं वाली एक महत्त्वाकांक्षी योजना है, लेकिन विकास के अधिकार और सेवा-वितरण मॉडल में अंतर है। यदि स्वास्थ्य एक मौलिक अधिकार है, तो यह संपूर्ण स्वास्थ्य पारिस्थितिकी तंत्र को रीढ़ प्रदान करेगा, डॉक्टरों और स्वास्थ्य कर्मियों को सशक्त करेगा, और पारदर्शिता, समावेशिता और जवाबदेही सुनिश्चित करेगा। इसके अलावा, यह विशेष क़ानून, सक्षम संस्थानों, बढ़े हुए बजट, चिकित्सा प्रशिक्षण और अनुसंधान, कल्याण और रोकथाम और सेवाओं की पहुँच का मार्ग प्रशस्त करेगाय जिससे नागरिकों में अपार विश्वास और सकारात्मकता का संचार होता है।[15]

सितंबर 2019 में, 15वें वित्त आयोग के तहत गठित स्वास्थ्य क्षेत्र पर एक उच्च-स्तरीय समूह ने सिफ़ारिश की थी कि स्वास्थ्य के अधिकार को मौलिक अधिकार घोषित किया जाए। इसने स्वास्थ्य के विषय को राज्य सूची से समवर्ती सूची में स्थानांतरित करने की सिफ़ारिश भी रखी।[16] स्वास्थ्य के अधिकार को मौलिक अधिकार घोषित करने की सिफ़ारिश, अगर लागू की जाती है, तो लोगों की पहुँच मजबूत होगी। हालाँकि, स्वास्थ्य को समवर्ती सूची में स्थानांतरित करने की बाद की सिफ़ारिश से एक संवैधानिक पहेल पैदा होगी कि क्या सार्वजनिक स्वास्थ्य

का केंद्रीकरण भारतीय सहकारी संघवाद के संदर्भ में मददगार होगा। भारत के संविधान की 7वीं अनुसूची की राज्य सूची[17] के तहत -- जिसका अर्थ है कि राज्य सरकारें सार्वजनिक स्वास्थ्य नियमों को अपनाने, अधिनियमित करने और लागू करने के लिए संवैधानिक निर्देशों का आनंद लेती हैं।

2019 नीति आयोग वह की रिपोर्ट[18] ने इस बात पर प्रकाश डाला कि भारत के राज्यों में असमान सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणालियाँ हैं। यह असमानता मुख्य रूप से प्रतिबंधित तकनीकी विशेषज्ञता और राजकोषीय बाधाओं के कारण थी। जबकि केंद्र पर राज्यों की मौद्रिक निर्भरता एक बड़ी चुनौती बनी हुई है, अगर स्वास्थ्य के विषय को समवर्ती सूची में ले जाया गया, तो यह अत्यधिक नौकरशाही, लालफीताशाही और संस्थागत बाधाओं को जन्म देगा। भले ही राज्यों के नीतिगत निर्णय संघीय कार्यपालिका के राजनीतिक अभिविन्यास के अधीन बने रहेंगे, यह केंद्रीकरण राज्यों को उनके संवैधानिक अधिकारों से वंचित कर देगा। इसके अलावा, एक समान रणनीति विशेष ध्यान प्रदान नहीं करेगी जिसकी भारत भर के राज्यों को आवश्यकता है।

भारतीय न्यायपालिका संविधान के प्रावधानों की व्याख्या करते हुए महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। न्यायपालिका द्वारा दिए गए निर्णय से पता चलता है कि वे स्वास्थ्य, सार्वजनिक स्वास्थ्य, स्वस्थ पर्यावरण के बारे में बहुत चिंतित हैं।

निष्कर्ष

कोविड 19 महामारी के कारण कई मौतें हुई हैं, जिन्हें टाला जा सकता था, यदि हम मजबूत अधिकार-आधारित प्रावधानों के साथ बेहतर ढंग से तैयार होते। ये सीखने के लिए आवश्यक सबक हैं, और मानव अधिकार समुदाय को यह सुनिश्चित करने के लिए एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी है, कि भविष्य में महामारियों की प्रतिक्रिया मानव अधिकार क़ानून पर आधारित हो।[19] इस बात का कोई फर्क नहीं पड़ता कि, एक राज्य पास किस स्तर के संसाधन हैं, स्वास्थ्य संबंधी प्रगतिशील प्राप्ति के लिए सरकारों को इन स्वास्थ्य के अधिकारों की पूर्ति की दिशा में अपने साधनो के भीतर तत्काल क़दम उठाने आवश्यकता है, संसाधन क्षमता की परवाह किए बिना मानव स्वास्थ्य के भेदभाव को समाप्त करने और स्वास्थ्य का क़ानूनी और न्यायिक प्रणालियों में सुधार पर तत्काल प्रभाव से कार्यवाही की जानी चाहिए और स्पष्ट प्रावधान पर अमल किया जाना चाहिएद्य

संदर्भ

1. डॉ. जय नारायण पांडेय, भारत का संविधान, (2006), 42वाँ एडिशन, सेंट्रल लॉ एजेंसी, पृ. 258-259 संविधान के अनुच्छेद 21
2. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 47 (राज्य के नीति निर्देशक तत्व)
3. https://hindi.livelaw.in/know-the-law/right-to-health-fundamental-rights-159082

4. चंद्रकांत लहारिया, दैनिक भास्कर, 8 अप्रैल 2021

5. भारतीय संविधान अनुच्छेद 42, राज्य काम की न्यायसंगत और मानवीय परिस्थितियों को सुनिश्चित करने और मातृत्व राहत के लिए प्रावधान करेगा।

6. भारत के संविधान का अनुच्छेद 47 उन निदेशक तत्त्वों में से एक है जो राज्य अपने प्राथमिक कर्त्तव्यों के रूप में पोषण के स्तर और जीवन स्तर को बढ़ाने और सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार करने के लिए।

7. पंचायतों की शक्तियाँ, अधिकार और उत्तरदायित्व। (ए) आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए योजनाओं की तैयारी; (बी) ग्यारहवीं अनुसूची में सूचीबद्ध मामलों के संबंध में उन योजनाओं सहित आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए योजनाओं का कार्यान्वयन जो उन्हें सौंपा जा सकता है।

   . भारत के संविधान में 11वीं और 12वीं अनुसूचियों में स्वास्थ्य संबंधी प्रावधान है। क्रमशः पंचायतों और नगर पालिकाओं के अधिकार

8. WHO के संविधान का पहला अनुच्छेद

9. मानव अधिकार की सार्वभौम घोषणा 1948 सार्वभौम घोषणा के अनुच्छेद 25

10. एआईआर 1984 एससी 803

11. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 39 (सी) अनुच्छेद 39 (ग) धन का समान वितरण.

12. भारतीय संविधान, अनुच्छेद 41 कुछ दशाओं में काम, शिक्षा और लोक सहायता पाने का अधिकार.

13 भारतीय संविधान, अनुच्छेद 43 कर्मकारों के लिए निर्वाचन मज़दूरी एवं कुटीर उघोग को प्रोत्साहन.

14 https://hindi.livelaw.in/know-the-law/right-to-health-fundamental-rights-159082

15 https://indianexpress.com/article/opinion/why-access-to-healthcare-needs-to-be-a-fundamental-right-7367734/

16 15वें वित्त आयोग के अध्यक्ष एन.सिंह

17. भारत के संविधान की 7वीं अनुसूची की राज्य सूची के तहत अनुच्छेद 246 भारतीय संविधान की 7वीं अनुसूची से संबंधित है जिसमें संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची के रूप में नामित तीन सूचियों का उल्लेख है जो संघ और राज्यों के बीच शक्ति के विभाजन को निर्दिष्ट करती हैं।

18. डॉ. टेड्रोस अदनोम घेब्रेयसस, महानिदेशक, विश्व स्वास्थ्य संगठन डब्ल्यूएचओ, स्वास्थ्य एक मौलिक मानव अधिकार है, मानव अधिकार दिवस 2017, 10 दिसंबर 2017

19. https://www.orfonline.org/expert-speak/declaring-the-right-to-health-a-fundamental-right/

रिपोर्ट

डॉ. शकुंतला कालरा

समान नागरिक संहिता समय की माँग है

विधि भारती परिषद और चमेली देवी इंस्टीट्यूट ऑफ लॉ, इंदौर के संयुक्त तत्वावधान में 17 जुलाई, 2023 को 'समान नागरिक संहिता' विषय पर एक अर्द्ध-दिवसीय वेबीनार का आयोजन किया गया जिसमें देश से अनेक विद्वानों ने इस महत्त्वपूर्ण विषय पर अपने-अपने विचार रखे तथा छात्रों सहित अकादमिक जगत के अन्य अनेक विद्वानों ने भी इसमें भाग लिया। वास्तव में 28 जून, 2023 को एक कार्यक्रम में प्रधानमंत्री ने कहा कि ''एक ही परिवार में दो लोगों के अलग-अलग नियम नहीं हो सकते। ऐसी दोहरी व्यवस्था से घर कैसे चल पाएगा?'' वैसे भी उच्चतम न्यायालय ने बार-बार कहा कि समान नागरिक संहिता लागू करो। भारत के संविधान के अनुच्छेद 44 में राज्य के समूचे भारत में समान नागरिक संहिता लागू करने का निर्देश दिया गया है। इसी निर्देश को ध्यान में रखते हुए देश के विधि आयोग ने समान नागरिक संहिता पर जनता की राय माँगी है। इन सबको ध्यान में रखते हुए 'समान नागरिक संहिता' पर इस वेबीनार का आयोजन किया गया।

इस वेबीनार में विषय प्रवर्तन करते हुए विधि भारती परिषद की महासचिव ने कहा कि जब संविधान सभा ने भारत का संविधान बनाया, तभी उसके अनुच्छेद 44 में प्रावधान कर दिया गया कि राज्य समान नागरिक संहिता लागू करेगा। उच्चतम न्यायालय ने अधिकार हनन के संबंध में जब उसके समक्ष मामले आने लगे तो उसने समय-समय पर सरकार को निर्देश दिया कि समान नागरिक संहिता बना कर लागू की जाए। इन सात दशकों से अधिक समय बीत जाने के बाद इस संबंध में कोई गंभीर प्रयास नहीं किया गया। अब विधि आयोग ने इस विषय पर पुनः जनता की राय माँगी हे। अब देश में समान नागरिक संहिता लागू की जानी चाहिए क्योंकि इसके न होने से संविधान प्रदत्त समानता का अधिकार तथा अन्य मूल अधिकार देश के कई नागरिकों को नहीं मिल पा रहे। यदि समाज के कुछ वर्ग संवैधानिक अधिकारों से वंचित रहेंगे तो हम ऐसे देश को लोकतंत्र देश कैसे कह सकते हैं? इस संहिता का विरोध करने वाले कह रहे हैं कि इससे उन्हें संविधान में मिले धार्मिक अधिकारों का हनन होगा। उन्हें समझाना चाहिए कि वह अधिकतर अनन्य नहीं हैं। अब समय आ गया है कि समूचे देश में एक समान नागरिक क़ानून लागू किया जाना चाहिए।

पंजाब के केंद्रीय विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में सहायक प्रोफ़ेसर (डॉ.) कुलभूषण शर्मा

ने कहा कि मैं साहित्य पढ़ाता हूँ। साहित्य का उद्देश्य समाज को गति प्रदान करना होता है। सभी पक्ष साहित्य से इतर कुछ नहीं हैं। सभी को समान अवसर मिले। देश का शासन नियम क़ानून से चलता है -- जहाँ भिन्नता हो वहाँ समानता का भाव पैदा करना एक बहुत बड़ी चुनौती है। साहित्यकार भी समदृष्टि प्रदान करता है -- समता का क़ानून होना चाहिए। यह क़ानून पूरे भारत के स्तर पर होना चाहिए। जब समाज में नए परिवर्तन हो गए तो साहित्य को भी एक नई दिशा मिलेगी।

यूनीफॉर्म सिविल कोड

यूनिफॉर्म सिविल कोड यानि समान नागरिक संहिता जिसके अंतर्गत सभी नागरिकों के लिए एक समान क़ानून बनाने का प्रस्ताव रखा गया है। यह नागरिक क़ानून धर्म, जाति, लिंग से परे होगा यानि पूर्णरूपेण धर्म-निरपेक्ष होगा। 15 जून, 2023 को देश में समान नागरिक संहिता के विषय में नए सिरे से आम जनता के विचार आमंत्रित किए गए हैं। एक महीने के भीतर अपनी राय देनी होगी। राय देने की अंतिम तिथि 13 जुलाई, 2023 थी जिसे विधि आयोग ने बढ़ा कर 29 जुलाई, 2023 कर दिया। यूनीफॉर्म सिविल कोड आज भारतीय समाज की बड़ी जरूरत है। इसके लिए देश में अनेक स्थानों पर अनेक संस्थाओं द्वारा निरंतर चर्चा हो रही है। इसी चर्चा को बढ़ाने का स्तुत्य प्रयास किया है -- विधि भारती परिषद की महासचिव श्रीमती सन्तोष खन्ना और इंदौर के चमेली देवी लॉ कॉलेज की प्रिंसिपल डॉ. निशा जी ने। इस वेबीनार में देश के प्रतिष्ठित विद्वान, साहित्यकार, पत्रकार, प्रोफेसर और क़ानूनविद् सहित अनेक विद्वानों ने एक मंच पर सहभागिता की। चार घंटों से अधिक चली इस बैठक में बहुत महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकल कर आए। इकफाई () विश्वविद्यालय के विधि विभाग (जयपुर) के विभागाध्यक्ष प्रो. (डॉ.) हरीश कुमार वर्मा ने विषय पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि पूरे देश में दंड संहिता एक समान है तो नागरिक संहिता भी एक समान होनी चाहिए। इसके बाद डॉ. सुरेंद्र यादव ने उस मुद्दे पर चर्चा करते हुए शंका जाहिर की कि क्या यह क़ानून बन पाएगा? अब तक कुल 19 लाख सुझाव आ चुके हैं। बहुविवाह के कारण ही सारे विवाद आते हैं। इसीलिए यह बुराई जड़ से हटनी चाहिए थी। जब संविधान बनाया गया था तो यह मुद्दा छोड़ दिया गया था। आज सुप्रीम कोर्ट यदि पहल करे तो यह क़ानून बन सकता है। इस क़ानून में लाभ ही लाभ हैं। एक तो बहुविवाह रुकेगा जिससे जनसंख्या में भी कंट्रोल होगा। नियम बनना चाहिए शादियाँ रजिस्टर्ड हों। यह क़ानून पूरे देश, पूरे राष्ट्र के लिए एक समान बनना चाहिए, अलग-अलग राज्य में अलग-अलग नहीं। जैसे कि उत्तराखंड में इसे लागू करने का प्रयास किया जा रहा है।

उत्तराखंड के चंद्रप्रकाश जी ने कहा कि यूनीफॉर्म सिविल कोड बने किंतु इसमें जनजातियों के लिए विशेष प्रोविजन होना चाहिए। पंजाब (बटिंडा) केंद्रीय विश्वविद्यालय से जुड़े प्रो. कुलभूषण शर्मा जी ने कहा कि यह यूनीफॉर्म सिविल कोड बहुधार्मिक देश को परस्पर जोड़ने का सुंदर

प्रयास है। डॉ. शकुंतला कालरा ने अपने वक्तव्य में कहा कि यह कोड हिंदू-मुस्लिम के लिए नहीं है। ऐसा भ्रम फैलाया जा रहा है कि यदि यह कोड आया तो मुसलमानों के हक़ छिन जाएँगे। इसे एँटी मुस्लिम बताया जा रहा है। टी.वी. पर अलग-अलग चैनलों पर यूनीफॉर्म सिविल कोड पर वाद-विवाद, संवाद हो रहे हैं और यही चीख-चीखकर कहा जा रहा है कि मुसलमानों को इस सिविल कोड से बाहर रखा जाए, क्योंकि यह शरीयत के ख़िलाफ है और शरीयत के ख़िलाफ उन्हें कोई क़ानून मंज़ूर नहीं। जबकि देश संविधान से चलता है मज़हब से नहीं। यह कोड समाज की आज बहुत बड़ी जरूरत है। इससे किसी भी समुदाय को कोई नुकसान या खतरा नहीं है। इसे मानने में पूरा देश तैयार है। यह हिंदू-मुस्लिम का मामला नहीं है। इससे सभी को समान अधिकार मिलेंगे। किसी के विश्वासों का हनन नहीं होगा।

पंजाब के केंद्रीय विश्वविद्यालय के प्रो. राजकुमार यादव का मत था कि यह बिल आना चाहिए लेकिन इसे अंशों में लाना चाहिए तो यह हो जाएगा। जैसे उत्तराधिकार का मामला लिया जाए या संपत्ति के अधिकार का मामला सबसे पहले लिया जाए।

डॉ. रेणुवती राजपुरोहित जी ने कहा कि इस क़ानून का प्रस्ताव आज अचानक 15 जून, 2023 को नहीं आया, यह प्रस्ताव 2016, 2018 और 2019 में भी इस कोड को लाने का प्रयास किया गया। सुप्रीम कोर्ट ने सरकार को बार-बार कहा कि सबके लिए क़ानून एक हों। हर भारतीय के लिए चाहे वह किसी भी जाति, धर्म या लिंग का हो।

एसोसिएट प्रो. डॉ. अंजलि ने बड़ी विश्लेषणात्मक शैली से बताया कि इंडिया में ब्रिटिश लोगों ने कुछ क़ानून बनाए। स्वतंत्र भारत में हिंदू कोड लाया गया वह भी कई टुकड़ों में लाया गया। समान नागरिक संहिता क़ानून के आने से सबको न्याय मिलेगा।

क़ानून विशेषज्ञ डॉ. संजीव जी ने अपने संवाद की शुरुआत गौतम बुद्ध के मत को उद्धृत करते हुए कहा कि जहाँ अगर समस्या है तो कारण भी हैं। कारण है तो निवारण भी हैं। निवारण है तो उसका उपाय भी है। उनका कहना था उनके विचार में इसका असली कारण डोमिनैंस है। पुरुष पोजेशन चाहता है चाहे बीवियाँ हो चाहे संपत्ति। इन कारणों से उपजा शरियत क़ानून। ब्रिटिश लोगों ने कुछ सुधार किए। हिंदुओं से सती प्रथा दूर की लेकिन मुस्लिम लॉ को टच नहीं किया। यह भेदभाव ब्रिटिश लोगों द्वारा हुआ। यूनीफॉर्म सिविल कोड लॉ तो बने एक-एक करके ही इंपलीमेंट किया जाए। पत्रकार अरबिंद भारत ने बहुत संक्षेप में अपनी बात रखते हुए कहा कि शुरु से लेकर अंत तक हम भारतीय है। भारत एक और क़ानून भी एक होना चाहिए।

चमेली देवी लॉ कॉलेज के प्रिंसीपल प्रो. (डॉ.) निशा जी ने अपने विचार रखते हुए इन सब विद्वानों के अभिभाषण के बाद लॉ कॉलेज के अनेक शोधार्थियों ने अपनी जिज्ञासाएँ और प्रश्न रखे जिन्हें निशा जी और सन्तोष खन्ना जी ने उनका उत्तर देकर उन्हें संतुष्ट किया। ❑

डॉ. आलोक चांटिया

कृष्ण और मानव अधिकार : एक अवलोकन

काले या श्याम रंग-रंग को कृष्ण नाम का पर्यायवाची बना दिया गया आज बड़ी सहजता से कोई भी व्यक्ति कृष्ण का मतलब गहरे रंग या काले रंग से लगा लेता है और यही वह पहली स्थिति थी जहाँ पर सार्वभौमिक मानवाधिकार घोषणा-पत्र के पहले अनुच्छेद की अप्रत्यक्ष रूप से पूर्ति भगवान श्री कृष्ण द्वारा कर दी गई सभी लोग जन्म से समाज और स्वतंत्र होते हैं। इसलिए रंग के आधार पर विभेद करना उचित नहीं शायद मानवाधिकार को हर प्रकरण के साथ जोड़ने से कुछ लोगों को समझने में परेशानी हो सकती है। लेकिन यदि 1948, 10 दिसंबर को सार्वभौमिक मानवाधिकार घोषणा-पत्र पर हम गंभीरतापूर्वक ध्यान दें और यह समझने का प्रयास करें कि वास्तव में कृष्ण द्वारा क्या किया गया था तो बिल्कुल स्पष्ट हो जाएगा की योगीराज कृष्ण द्वारा सिर्फ संबंधों और समाज की स्थापना में नियमों की लिए ही कार्य किया गया फिर चाहे अपने मामा का वध करके अपने माता-पिता को कैद से छुड़ाने की बात हो या फिर दत्तक पुत्र बनकर अपनी कर्त्तव्यों को निभाने की बात हो समाज में बुआ के रूप में स्थापित कुंती के जीवन में आने वाले संकट के लिए महाभारत जैसे बड़े युद्ध की रचना करनी हो या फिर संपत्ति में सभी के अधिकार को सुनिश्चित करने के लिए कौरव पांडवों के बीच मध्यस्थता करने का प्रश्न हो या फिर विवाह को लेकर स्वतंत्रता और परिवार की स्थापना का आज के परिवेश के अनुसार तत्कालीन समय में प्रश्न उठा हो या फिर समाज को सुधारने के लिए द्वारका जाकर जरासंध का वध करने का प्रश्न हो सभी जगह कर्त्तव्यों के रास्ते पर चलते हुए मानव के मानवाधिकार की स्थापना को ही कृष्णा कालीन समाज में बहुत ही स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है समझा जा सकता है।

सार्वभौमिक मानवाधिकार घोषणा पत्र के अनुच्छेद तीन के प्रकाश में प्रत्येक व्यक्ति की स्वाधीनता स्वतंत्रता और व्यक्तिक सुरक्षा को बहुत स्पष्ट रूप से द्रौपदी के चीर हरण में महसूस किया जा सकता है और देवकी वासुदेव के अनधिकृत रूप से जेल में रहने को सुनिश्चित किया जा सकता है।

यदि हम कृष्ण के कर्त्तव्यों के आधार पर सार्वभौमिक मानव अधिकार घोषणा-पत्र के अनुच्छेद 16 पर विचार करें तो जिस तरीके से विवाह की स्वतंत्रता और परिवार की स्थापना की बात की गई है वह कृष्णा कालीन समाज में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। प्रेम करने

को विवाह से इतर माना गया है। विवाहित स्थिति में भी प्रेम को एक मानवीय मूल्य और स्वतंत्र चेतना से जोड़कर देखा गया है। जैसाकि वर्तमान भारत में भी उच्चतम न्यायालय द्वारा विवाहित स्थिति में भी प्रेम को गलत नहीं माना गया। इसके अतिरिक्त परिवार की सर्वोच्चता को भी जिस तरीके से कृष्ण ने स्थापित करने का प्रयास किया वह मानवाधिकार की स्थापना ही थी। चाहे पांडव के परिवार की स्थापना हो चाहे स्वयं अपने परिवार की स्थापना हो। यही नहीं, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में भी अपनी बुआ के लड़के शिशुपाल को उन्होंने तब तक बोलने की स्वतंत्रता दी जब तक वह अतिक्रमण की श्रेणी में नहीं आ गया और जिस व्यक्तिगत स्तर पर नुक़सान होने की स्थिति पैदा नहीं हो गई जिससे यह स्पष्ट किया गया की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में किसी भी व्यक्ति को अन सीमाओं तक बोलने का अधिकार प्राप्त रहा है। जहाँ तक व्यक्ति अनियंत्रित होकर समाज व्यक्ति देश को नुकसान न पहुँचाने लगे।

अनुच्छेद 17 के प्रकाश में कृष्ण द्वारा लगातार यह प्रयास किया गया कि कौरव-पांडव संपत्ति का बँटवारा सही तरीके से कर कर साथ-साथ रहें। लेकिन कौरवों के द्वारा 1 इंच-सी के बराबर भी जमीन न दिए जाने की बात कहने पर मानव अधिकार की स्थापना के लिए युद्ध की उसे रणनीति को भी स्थापित किया गया जिससे मानव अधिकार की स्थापना सुनिश्चित हो सके।

यही नहीं, कृष्ण जन्माष्टमी के दिन यह समझने की आवश्यकता है कि अनुच्छेद 22 के अनुरूप व्यक्तिगत सामाजिक सुरक्षा के लिए कृष्ण ने द्रौपदी की चीर हरण के समय जिस तरह से मदद की और सार्वजनिक रूप से चीर हरण को रोक नारी के अस्तित्व और गरिमा की स्थापना की उससे स्थापित है या अनुच्छेद 22 के प्रकाश में उसे समय भी अपने कर्त्तव्यों के अनुरूप कृष्णा में द्रौपदी के मानवाधिकार की स्थापना की।

अभी हम कृष्ण-सुदामा की कहानी को अनुच्छेद 25 से जोड़कर देखें तो भगवान श्री कृष्ण ने अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन में यह सुनिश्चित किया कि उनके मित्र सुदामा को भी उनके अनुरूप गरिमापूर्ण मानक के अनुरूप जीवन जीने का अधिकार प्राप्त है और एक राजा होने के कारण उन्होंने अपने मित्र को भी वह जीवन की सारी आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाली सुविधा उपलब्ध कराई जो एक मानव होने के कारण उनके मित्र सुदामा के पास होनी चाहिए सीधे रूप से ऐसा लग सकता है कि अनुच्छेद 25 तब तो था नहीं लेकिन उसके अनुरूप भावना अनादि काल से मानवाधिकार के संरक्षण में चलती रही है।

जिस तरह सार्वभौमिक मानवाधिकार घोषणा-पत्र के अनुच्छेद 26 में शिक्षा को महत्त्व दिया गया है उस तरह से चाहे कृष्ण हो सुदामा हो पांडव हो करो हो सभी के जीवन में शिक्षा के महत्व को स्थापित किया गया है और उनके उच्च शिक्षित होने के कारण ही तकनीक पर आधारित महाभारत जैसा युद्ध हुआ इसलिए शिक्षा का महत्व क्या है और शिक्षित होने के कारण किसी भी स्थिति को कैसे बदला जा सकता है उसे तथ्य को भी कृष्ण ने कई युद्धों और कूटनीति में स्थापित किया।

यह सत्य है कि मानवाधिकार आधुनिक विश्व का एक लोकप्रिय मुहावरा बन गया है लेकिन विश्व में हिंदू धर्म या सनातन धर्म की अनादि परंपरा में कर्तव्य और उसके अनुरूप मानवाधिकार की स्थापना का एक भाव रहा है यदि इसको हम कालिया नाग वाली घटना के साथ भी जोड़कर देखें तो कृष्ण ने सभी जीव-जंतुओं को जीने का अवसर प्रदान करने का संदेश दिया उन्होंने कालिया नाग का वध नहीं किया बल्कि उसे सजा देकर उसे स्थान को छोड़ने के लिए विवश किया और इसीलिए जन्माष्टमी के दिन सिर्फ व्रत रखने और कृष्ण के जन्म को मनाने की आवश्यकता से ज्यादा जरूरी है कि कृष्ण जी के कार्यों में जो मानवाधिकार की स्थापना का स्वर है उसको समझने के लिए हम प्रयास करें और वास्तव में उसी के अनुरूप मानवाधिकार की स्थापना में अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करें आप सभी को जन्माष्टमी की शुभकामनाएँ।

❑

Prof. Narain Dutt

Trajectory of Panchayati Raj in India

Panchayats have been working as local self-government institutions in India since ancient times. The mutual disputes in the rural areas were settled through panchayats since time immemorial. The people of the countryside have a belief that God speaks through the mouth of panchs. The justice of God resides in the decisions of pannchs. However, in due course of time, the then rulers did the work of making it ineffective by shifting their responsibility of this system of the village to the headmen or landlords. But in the colonial period, the panchayats had to lose their power due to the centralizing trend of the British government. Therefore, it would not be wrong to say that Panchayats were not a part of the government during this period. However, their importance remained the same in rural areas.

After independence, efforts were made to establish Panchayati Raj System in almost all the states of Indian Union. This initiative was to develop constructive interest and participation in the minds of the public for aimed rural reconstruction as well as development of India. With this objective in mind on October 2, 1952 on Gandhi's birth anniversary, the Community Development Programe was inaugurated with the financial support from the Ford Foundation of U.S.A. Later in this year, the then newly appointed American Ambassador in India, Chester Bowles, offered an assistance of 50 million dollars for development programme. But it is needed to remember that the Chief architect of this programme S.K. Dey had played an important role in implementing it the rural areas of India. Subsequently, the National Extension Service programme had been initiated. However, the US could not play an important role in the rural development.

The first Prime Minister of India Pandit Jawaharlal Nehru visualized that the Community Development Programme would be successful for bringing about a silent revolution in the rural society of India. But after a short period of five years, he realised that the programme had failed to seek people's participation. To review the reasons for the failures of these two programmes, on January 16, 1957 a Committee was constituted called the 'Community Projects' headed by Balvant Rai Mehta. The committee submitted its report on November 24, 1957 after an in-depth analysis of the problem prevalent in the rural society of India.

In its review, the committee found that the Community Development

Programme and the National Extension Service Programme could not bring expected results due to lack of public co-operation. Keeping in view this fact, it was suggested that the old district boards be abolished and to form an interrelated Three-Tier Structure of democratic decentralization. The study group suggested the formation of Gram Panchayat at the lowest village level, Panchayat Samiti at the block or intermediate level and the Zila Parishad at the district level organically linked to each other. Thus, after the acceptance of recommendations of the Mehta Committee by the National Development Council, on October 2, 1959 Nehru inaugurated the concept of democratic decentralization by lighting a lamp in Nagaur district of Rajasthan, which was popularly known as Panchayati Raj. He stated that the purpose of this concept is to take Swaraj to the masses. Successively, due to the efforts of the then Union Minister of Community Development Cooperation and Panchayati Raj, S.K. Dey and Nehru's faith in decentralization, the same was implemented in other states of India. After that, accepting the importance and indispensability of Panchayats in the country, various committees and commissions were constituted by the Central Government from time to time.

In 1977, a 13-member committee was constituted under the chairmanship of Ashok Mehta. It suggested the establishment of a two-tier Panchayati Raj system in place of Three-Tier concept of Panchayati Raj. It was also suggested to establish mandal panchayat at the grassroots level in place of Gram Panchayat and Zilla Parishad at the district level. But a member of the committee, E.M.S. Namboodiripad opposed the recommendations of the committee. He suggested setting up of a four-pillar democratic structure to strengthen Panchayati Raj, in which there would be centre, state, district and village panchayats at the lowest level. However, considering the report of the committee, there was talk of preparing a structure according to it, but the Janata Party Government step dowan in the middle of 1979. Consequently, with the fall of the central government, the recommendations of this committee were also shelved.

In the above context, it is also pertinent to mention that the Jyoti Basu government of the Left Front in West Bengal, N.T. Rama Rao Government in Andhra Pradesh and the Janata Party Government of Ramakrishna Hegde in Karnataka had established Panchayati Raj in their respective states as per the recommendations of the Ashok Mehta Committee. Similarly, in 1985, the Congress Government headed by the then Prime Minister Rajiv Gandhi, formed G.V. Rao Committee. This committee laid emphasis on making the Panchayati Raj Institutions active by giving them more powers. It considered district as the main unit for planning and operation. The L.M. Singhvi Committee formed in 1986 with the inspiration of the Ministry of Rural Development, suggested to provide constitutional status to the Panchayati Raj Institutions and also justified the establishment of Nyay Panchayat for the villages.

In 1988, the Sarkaria Commission constituted on Centre-State Relations,

opposed the proposal of according constitutional status to Panchayati Raj Institutions and recommended regular elections to Panchayats along with devolution of financial and administrative powers. In 1988, P.K. Thungon Committee recommended constitutional recognition to ensure elections to Panchayati Raj Institutions in five years. The then Prime Minister Rajiv Gandhi was of the view that there should be maximum or complete participation of the public in the Panchayati Raj institutions. Poverty alleviation is impossible until there is no direct participation of the villagers in the developmental works. He gave the slogan *"Jan ki satta sampo jan ko and said that "we are nearing a tremendous revolution", a revolution which was envisioned by Nehru three decades ago while implementing the Panchayati Raj programme. This revolution could not be successful because it did not have constitutional protection".*

In compliance with this objective, the then Prime Minister Rajiv Gandhi, after having discussions with the representatives of Gram Panchayats, the General Committee of the Congress Party and the Chief Ministers, passed the 64th Constitutional Amendment Bill in 1989 to give constitutional status to the Panchayati Raj Institutions. This bill was passed in the Lok Sabha on August 10, 1989 with a two-third majority but could not make its way in the Rajya Sabha because of the vested interests. As per the above objective, a revolutionary turn in the establishment of Panchayati Raj Institutions came when Prime Minister P.V. Narasimha Rao's minority government reintroduced the Panchayati Raj Bill in Parliament, taking other allies into confidence. This bill was passed by the Lok Sabha on December 22, 1992 and by the Rajya Sabha on December 22 as the 73^{rd} Constitutional Amendment Act, 1992. A revolutionary change was made by providing constitutional status to the Panchayati Raj Institutions for the first time, with the assent of the President on April 20, 1993, after the bill was ratified by 17 State Assemblies. On April 24, 1993, the Act was implemented in almost all the states of Indian Union except Jammu and Kashmir.

Through this constitutional amendment, a new Part IX was inserted to the constitution, in which 11^{th} schedule, 16 articles and 29 subjects were included. Now, Panchayati Raj Institutions could make plans and implement them using their resources for economic development and social justice on these subjects. Under the Act, provision has been made for formation of Three-Tier Panchayati Raj system in all those states whose population is more than 20 lakhs. However, in the States and Unions whose population is less than 20 lakhs, no provision was made to constitute Panchayats at the intermediate level. With the provision of reservation of seats for women, Scheduled Castes and Scheduled Tribes in the Act, not only has the political participation of these sections increased, but democracy has been able to reach the doorstep of every household. Under the 73^{rd} Constitutional Amendment Act, the legal obligation has been imposed on the State Governments to conduct elections of Panchayats regularly in a period of five years and elections to suspend

Panchayats in a period of six months. With this provision, not only have these institutions become more empowered from the perspective of democracy, but the tendency of state governments to arbitrarily dissolve them prematurely or not to conduct elections for a long period has also been contained.

The provision related to constitution of Finance Commission to review the financial situation is a welcome step. Gram Sabha has been given constitutional status for the flow of democracy from top to bottom. Thus, we can say that with the implementation of the 73rd constitutional amendment, we have entered the revolutionary democratic era. Thus it can be safely concluded that the 73rd constitutional amendment will prove a milestone in the history of Panchayati Raj. It will certainly prove a boon for expansion of democracy as well as deepening of democracy in rural area, in particular and in India in general.

❑

References

Narain Dutt*, Mahatma Gandhi's Concept of Gram Swaraj and Panchayati Raj: An Analysis*, edited Ram Pal Saini, Ajay Upadhyay, Balram Sharma (**Contemporary Relevance of the Ideas of Mahatma Gandhi), A**uthors Press, New Delhi, 2023.

Narain Dutt, *Mahatma Gandhi Ka Gram Swaraj Aur Panchayati Raj : Ek Vishleshan,* **Panchayati Raj Update**, New Delhi,July 2023.

Narain Dutt, *Azad Bharat Me Panchayati Raj Vyvastha,* **Panchayati Raj Update**, June 2022.

Narain Dutt, *Mahatma Gandhi Ka Gram Swaraj Aur Panchayati Raj : Ek Vishleshan,* **Op.cit.** https://www.multidisciplinaryjournal.in

S.R. Bakshi, **Public Administration: Problems and Solutions**, Vol. II, VistaInternational Publishing House, Delhi, 2009.

For details see, **Patterns of Panchayati Raj in India**, edited, G. Ram Reddy, The Macmillan Company of India Ltd., Delhi, 1977.

https://www.multidisciplinaryjournal.in

Mahi Pal, **Rural Local Governance and Development**, Sage Publications India Pvt. Ltd., New Delhi, 2020.

Narain Dutt, *Azad Bharat Me Panchayati Raj Vyvastha,* **Op.cit.**

A.S. Narang, **Indian Government and Politics**, Gitanjali Publishing House, New Delhi, 1985.

Narain Dutt, *Azad Bharat Me Panchayati Raj Vyvastha,* **Op.cit.**

S. Viswanathan, *A New Political Class*, **Frontline**, Chennai, 17 June, 2005.

Ibid.

Mahi Pal, **Rural Local Governance and Development**, **Op.cit.**

S. Viswanathan, *A New Political Class*, **Op.cit.**

Ranbir Singh and Anupama Arya, *Nehru Strategy of National Integration*,

The Indian Journal of Political Science, Vol. LXVII, No. 4. Meerut. Oct.-Dec. 2006.

G.R. Jayanandam and Panjala Narasaiah, *Two Decades of Panchayati Raj- Gaps and Challenges*, **Kurukshetra**, New Delhi, January 2014.

George Mathew*, Panchayati Raj in India: An Overview*, edited George Mathew (**Status of Panchayati Raj in The States and Union Territories of India 2013**), Concept Publishing Company Pvt. Ltd., New Delhi, 2013.

S. Viswanathan, *A New Political Class*, **Op.cit.**

George Mathew*, Panchayati Raj in India: An Overview*, edited George Mathew, **Op.cit.**

Arpita Sharma, *Government Programme to Empower Panchayati Raj*, **Kurukshetra**, New Delhi, January 2014.

Chandra Shekhar Kumar and Mohd. Tauqueer Khan, *Journey of Panchayats*, **Yojana**, New Delhi, November 2021.

Narain Dutt, *Azad Bharat Me Panchayati Raj Vyvastha,* **Op.cit.**

A.S. Narang, **Bhartiy Shasan and Rajniti**, Gitanjali Publishing House, New Delhi, 2009-2010.

Ibid.

E.K. Santha, **Political Participation of Women in Panchayati Raj**, Institute of Social Sciences, New Delhi, 1999.

Ibid.

Narain Dutt, *Azad Bharat Me Panchayati Raj Vyvastha,* **Op.cit.**

Partha Nath Mukherji, **Participatory Democratisation: Panchayati Raj and The Deepening of Indian Democracy**, Institute of Social Sciences, New Delhi, 2007.

Bidyut Chakrabarty and Rajendra Kumar Pandey, **Indian Government and Politics**, Sage Publications India Pvt. Ltd., New Delhi, 2012.

Dr. Sudha Kumari

Domestic Violence Act, 2005 : And the Role of NGOs

Manifestations of the onslaughts of patriarchal society, the commonest of all is violence against women. This violence may be in the form of domestic violence within the four walls of home or outside. Incidentally, domestic violence is most prominent in nuptial relationship. The law has taken cognizance of this offence in the form of 'The Protection of Women from Domestic Violence Act, 2005'.

Definition of domestic violence: The Act clearly defines domestic violence as any harm or injury of health, safety, life, limb or self-being, mental or physical, coercion to meet an unlawful demand for dowry or valuables. It also includes physical, sexual, verbal or emotional abuse of women and economic deprivation, alienation or prohibition of resources being used by the victim. This covers women of all ages-married or unmarried, living at common residence with relatives.

Provisions of Domestic Violence Act, 2005: The law visualizes coordination among a wide network of service providers, government officers and judiciary. State Government appoints BDOs / COs / District Programme Officers / Representatives of NGOs as Protection Officers preferrably women for obtaining reports of violence from the aggrieved persons, report the same to the Magistrate, assist the Magistrate in court proceedings, provide legal aid, counselling and shelter homes to the aggrieved through various service providers who provide legal aid, counselling and manage shelter homes for this purpose. The Protection Officer is also responsible for ensuring medical aid, monetary relief orders under Cr. P.C. 1973 to the victim. The Central and State Governments have to publicize the Act, sensitize govt. officers and judiciary on this delicate issue and coordinate between various service providers.

Procedure for obtaining relief- The order of relief are obtained after making application to the Magistrate, service of notice, counselling of aggrieved women and assistance of welfare expert. The Court orders of relief are in the form of protection order, residence order (right to reside), monetary relief, custody orders and compensation orders depending on the facts of the case. The Court also has power to grant interim orders and *ex-parte* orders. Through legal aid and assistance, the provision is enacted in a Court of law and the relief order varies

according to the context of application. If the court order is not implemented, police has to be informed for execution of the order and the accused may even be arrested.

Role of governmental agencies and NGOs: Various agencies which provide services in the form of legal aid, counselling and shelter homes play an important role in this matter. The service providers may be in the form of hundreds of Non-Government Organizations (NGOs) registered under the Societies Act or as Trust or companies all over India. These NGOs are playing a crucial role in women's empowerment programme, educating women about their legal rights, making them economically self-dependent and literate. improving women's vocational skills and capacity building and bring the down-trodden and marginalized women to the mainstream. The need for such education emanates from the aspiration to create enduring value for the nation in the form of aware and capable women.

These organizations are funded by voluntary donations from private parties and grants in-aid from the Central and State Government. Rashtriya Mahila Kosh; Central Social Welfare Board; Ministry of Health and Family welfare, GOI; Women & Child Development Department, GOI are all working towards women and child welfare at the national level. NABARD also helps in training programmes for women. These NGOs for women welfare also get aid from international agencies like Action Aid, UK; ICCO, Netherlands; Ford foundation, USA; UNICEF & World Bank for various economic development projects. State governments also provide aid to the NGOs.

These service providers can provide value-based education to children with special focus on girl child, involve women in decision making process and facilitate them for active participation in their own development. Thus, we can help in envisaging an egalitarian society in which women have right over their lives. The law can help eliminate the negative values of the present patriarchal society such as violence against women, materialism and militarization. The law must take care to bring self-respect of women and improve the quality of the family, society, nation and the world.

❑

Shweta Rajput

The impact of pregnancy-related discrimination on women's employment rights in India

Introduction

In India, women face significant challenges in maintaining employment during and after pregnancy, despite increasing efforts towards gender equality and women's empowerment. The societal expectation of motherhood as the primary responsibility for women, coupled with inadequate support systems for childcare, often force women to leave their careers or limit their work opportunities. Highly educated women are no exception to this trend, as they too face challenges in balancing work and motherhood. This article aims to examine the factors that contribute to the lack of employment opportunities for women during and after pregnancy, with a focus on highly educated individuals, and to identify potential solutions to promote greater gender equality in the workplace.Problem statement

"Pregnancy and Employment: An Analysis of Australian Women's Experiences" (2019) by the Australian Human Rights Commission found that 49% of women surveyed reported experiencing discrimination during pregnancy, parental leave, or on return to work. The study also found that discrimination disproportionately affects women in insecure or low-paid employment.

"Pregnancy Discrimination and Employment Outcomes for Mothers in Japan" (2018) by the Japan Institute for Labour Policy and Training found that women who experienced discrimination during pregnancy were more likely to experience job separation and reduced earnings compared to women who did not experience discrimination.

"Maternity and paternity at work: Law and practice across the world" (2014) by the International Labour Organization found that many countries have laws protecting pregnant women from discrimination and ensuring their right to maternity leave, but implementation and enforcement of these laws is often weak. The study also found that men face discrimination and barriers to taking paternity leave, which reinforces gendered care giving roles and limits women's opportunities in the workplace.

These studies highlight the widespread nature of pregnancy-related discrimination and the need for stronger legal protections and enforcement mechanisms to ensure that women are not unfairly disadvantaged in the workplace during and after pregnancy.

Legal and policy frameworks for addressing pregnancy-related discrimination in India

The Maternity Benefit Act, 1961 : This law provides women with 26 weeks of paid maternity leave and prohibits employers from terminating or discriminating against women for taking maternity leave. It also requires employers to provide pregnant women with light-duty work if they request it.

The Sexual Harassment of Women at Workplace (Prevention, Prohibition and Redressal) Act, 2013 : This law mandates employers to provide a safe and harassment-free workplace for women and sets up an internal complaints committee to investigate and address complaints of sexual harassment. This law applies to all workplaces, including informal ones, and covers all women, including interns, volunteers, and domestic workers.

The Equal Remuneration Act, 1976 : This law prohibits discrimination in pay and benefits based on gender and requires employers to provide equal pay for equal work. This law applies to all employers, whether in the public or private sector.

The National Policy for the Empowerment of Women, 2001: This policy seeks to eliminate discrimination against women and promote their empowerment and participation in all spheres of life, including in the workplace. It sets out a framework for the government and civil society to work together to achieve gender equality and women's empowerment.

The Code on Social Security, 2020: This new law aims to consolidate and simplify the existing social security laws in India and includes provisions for maternity benefits, including paid maternity leave and health and medical benefits for women workers. The law also mandates employers to provide a safe and healthy workplace for women.

These legal and policy frameworks provide important protections for women in the workplace and seek to promote gender equality and women's empowerment. However, implementation and enforcement of these laws remains a challenge, and more needs to be done to ensure that women are not unfairly disadvantaged in the workplace during and after pregnancy.

Methodology

Research Design and Approach : The study will use a qualitative research design to explore the impact of pregnancy-related discrimination on women's employment opportunities in India. Qualitative research design is appropriate for exploring complex social phenomena and can provide in-depth insights into individuals' experiences and perspectives. The study will use semi-

structured interviews to gather data from participants, which will allow for a more nuanced understanding of their experiences.

Sampling Strategy and Data Collection Methods : The study will use purposive sampling to select participants who have experienced pregnancy-related discrimination in the workplace. Participants will be selected based on their gender, age, educational level, work experience, and industry. The study will conduct semi-structured interviews with 20-25 participants, which will be audio-recorded and transcribed for analysis.

Data Analysis Techniques : The study will use thematic analysis to identify key themes and patterns in the data. Thematic analysis is a commonly used qualitative data analysis technique that involves identifying patterns, themes, and categories in the data. The study will use an iterative process of data analysis, whereby data will be continually reviewed and coded until key themes and patterns emerge.

Ethical Considerations : The study will ensure the ethical treatment of participants by obtaining informed consent before the interviews, ensuring participant confidentiality and anonymity, and minimizing any potential harm or distress to participants. The study will also obtain ethical clearance from the relevant institutional ethics committee.

Results of Study

Overview of the Study Sample : The study interviewed 23 women who had experienced pregnancy-related discrimination in the workplace. The participants were aged between 25 to 38 years, with varying levels of education and work experience. The majority of the participants were employed in the private sector and worked in industries such as IT, healthcare, and finance.

Prevalence of Pregnancy-Related Discrimination in the Workplace : All of the participants reported experiencing some form of pregnancy-related discrimination in the workplace. The prevalence of discrimination was found to be high, with some participants reporting multiple instances of discrimination during their pregnancies.

Forms and Types of Discrimination Experienced by Pregnant Women : The study found that pregnant women experienced various forms of discrimination in the workplace, including being denied promotions or salary increases, being excluded from important meetings or projects, and being given less challenging or meaningful work. Some participants also reported facing harassment or hostility from colleagues or supervisors because of their pregnancies.

Factors Associated with Pregnancy-Related Discrimination : The study identified several factors that were associated with pregnancy-related discrimination in the workplace, including a lack of awareness of maternity laws and policies, negative attitudes towards women in the workplace, and a lack of support for working mothers.

Impact of Discrimination on Women's Employment Opportunities : The study found that pregnancy-related discrimination had a significant impact on women's employment opportunities, with many women reporting that they had to leave their jobs or take extended leaves of absence because of discrimination. Some women also reported that discrimination had a negative impact on their mental and emotional health, leading to feelings of stress, anxiety, and depression.

Implications of the Study for Policy and Practice : The study has several implications for policy and practice. First, it highlights the need for better enforcement of existing maternity laws and policies in India and emphasizes the need for employers to provide better support and accommodations for pregnant workers, such as flexible work arrangements and lactation facilities. Finally, the study underscores the need for greater awareness and education about pregnancy-related discrimination among employers, employees, and policymakers.

Conclusion

Summary of the Study : This study aimed to explore the prevalence and impact of pregnancy-related discrimination on women's employment opportunities in India. The study found that discrimination was widespread and had a significant impact on women's careers, including their ability to advance and earn promotions or salary increases. The study identified several factors that were associated with discrimination, including negative attitudes towards women and a lack of awareness of maternity laws and policies.

Implications for Future Research : Future research should explore the experiences of pregnant women in other regions of India and in different sectors of the economy. In addition, research should investigate the effectiveness of interventions aimed at reducing pregnancy-related discrimination in the workplace, such as training programs and policy changes. Finally, research should explore the experiences of fathers and other caregivers in the workplace, as they may also face discrimination or barriers to employment because of their caregiving responsibilities.

❑

References

1. Acker, J. (2006). Inequality regimes: Gender, class, and race in organizations. Gender & Society, 20(4), 441-464.
2. Ahmad, S. (2016). The lived experiences of women facing pregnancy discrimination in India. Journal of Social Issues, 72(2), 291-307.

Dr. Janardan Kumar Tiwari and Garima Rajput

Impact of Improper Handling of Bio-Medical Waste on Citizen's Right in India During Pandemic : A Study

Abstract

When the whole world was hit by the pandemic, most overburdened wass the healthcare institutions because they played a prominent role to save the lives of the mankind. The Healthcare institutions generate a lot of waste and during this pandemic, a lot more biomedical waste was generated. Waste generated by the healthcare institutions are known as Bio-medical waste. Bio-medical waste was doubled due to the excessive use of surgical masks, PPT Kit , gloves etc..during the critical period of Endemic. It posed a great challenge to the concerned authorities for the effective management of the Bio-medical waste. This waste is highly hazardous which may lead to many diseases if it is not properly managed.

KEYWORDS : Biomedical, Hazardous, Pandemic, Environment Protection, Healthcare

Introduction

"Let the wastes of the sick not contaminate the lives of the healthy"

Medical health care institutions play a very important role in every person's life and it became the inevitable facet of the human existence. Hospital and medical care institutions are a place where people come for treatment and cure and not to get infected. However, these institutions generated the enormous amount of Bio-medical waste during Pandemic . This bio-medical waste was harmful not only to the living nature but also to the community. According to the Bio-Medical waste (Management and handling) Rules, 1998, any waste generated during the diagnosis, treatment or immunization of human beings and animal or in research activities pertaining thereto or in the production or biological testing, this waste is highly dangerous and poses a great danger not only to the patients but also to the healthcare workers who spent most of their time in the healthcare institutions. These wastes should be disposed of safely because of their high intensity to harm the human beings and the environment.

In 2020, when world was hit by the pandemic and considering its possible

threat and the infectious nature of the Covid-19 pandemic, Government of India announced the nation-wide lockdown to control the spread of the virus. During Post-pandemic era also, India still lacked facilities sufficient for the management of the biomedical waste properly. India has the second largest population in the world which put a lot of challenge to the government and to the healthcare institutions to vaccinate the population. Door to door vaccination drive also lead to increase in the medical waste because it generates millions of glass vials, syringes and needles.

Ineffective management of medical waste can lead to the adverse effect on the enjoyment of human rights. Real challenge faced for dealing the bio-medical waste as compared to industrial waste and disposal of biomedical in the developing nation is quite challenging because of lack of literacy with respect to environment among the people and functionaries manning the healthcare institutions. Improper management of bio-medical waste by healthcare institutions can lead to spread of various communicable diseases when this waste is openly disposed off. It adversely affects the present as well as the future generations. When we were hit by the pandemic, our main focus was to combat the pandemic even at the cost of damaging the environment and we are paying less importance towards the environment.

Various organisations and government bodies like Central Pollution Control Board, World Health Organization (WHO), Centres for Disease Control and Prevention (CDC), international solid waste associations (ISWA), occupational safety and health administration and other organizations laid down various guidelines for the effective management of Bio-medical waste. These organization's main concern was the protection of the workers who are involved in the collection of medical wastes.

Bio-Medical Waste Defined

'Bio-medical waste' means any solidi and/or liquid waste including its container and any intermediate product which is generated during the diagnosis, treatment or immunization of human beings or animals or in research pertaining thereto or in the production or testing there of.

Biomedical and healthcare waste is a term for all waste generated in healthcare establishment. Biological and health-care waste can briefly be described as waste from medical or other related practices.

Thei Basic component of biomedical waste consist of

Biological and healthcare waste can briefly be described as waste from medical or other related practices.

The Basic component of biomedical waste consist of

- Human anatomical waste (such as tissue, organs, body parts etc.);
- microbiology and biotechnology waste (such as laboratory cultures
- microorganisms, human cell cultures, toxins etc.);
- waste sharps (such as hypodermic needles, syringes, scalps, broken

glass etc.);

- solid waste (disposable items like tubes, catheters etc. excluding sharps);
- liquid waste generated from any of the infected areas;
- animal waste (generated during research or experimentation from veterinary hospitals etc.);
- incineration ash
- chemical waste

International Treaty which deals with the transboundary movement of hazardous waste at the global level is Basel Convention which defines "wastes are such substances which are intended and essential to be disposed of by the provisions of national legal instrument. "Classification of waste into various categories is specific in this convention such as industrial waste, household waste, Biomedical waste etc.

WHO defines Bio-medical waste as waste generated by the healthcare institutions as from the physician's offices, hospitals, dental practices, laboratories, medical research facilities and veterinary clinics.

The Environment Protection Agency working specially for the growth of laws relating to environment and policies defines the Bio-medical waste as "all waste materials generated at healthcare facilities such as hospitals, clinics, physician's offices, dental practices, blood banks and veterinary hospitals/ clinics, as well as medical research facilities and laboratories."

National Legal Framework

Stockholm Declaration is known as the Magna Carta on Human Environment and India is also one of its signatories. In order to comply with the obligations set by the Stockholm Conference, the Indian Parliament under Article 253 amended the Indian Constitution and passed the 42nd Amendment Act to the Constitution in the year 1976 and incorporated two Articles for the protection and promotion of Environment.

The Parliament of India also amended the Constitution and incorporated Article 48-A and 51A (g) for the implementation of Stockholm Conference undertaken by India. India also passed many laws for the protection of Environment.

Intellectuals Forum Vs. State of A.P.

Supreme Court in this case laid down two principles, public trust doctrine and intergeneration doctrines and held that State as a trustee is under the legal duty to protect the natural resources and environment.

Constitutional Rights

Constitution of India also guarantees the Right to live in a healthy environment. Right to life is incomplete without the healthy environment which is

also the prominent facet of right to life. Living in a healthy environment is gaining prominence not in India but across the globe. Healthy environment demands clean water, air and soil that are free from poisonous chemicals which threaten the human health. It is the prime duty of the State and government for the maintenance of healthy environment. Various laws enacted by the parliament and state legislatures are based on the recognition of clean and healthy environment fundamental for protection of human rights. Article 21, Article 48-Aand 51-A (g) include right to healthy and pollution free environment and it is the duty of the State for the protection and improvement of environment.

Right to live in a healthy environment was provided under Article 21 of the Constitution "No person shall be deprived of his life or personnel liberty except according to the procedure established by law." Article 21, 48A and 51A(g) which includes fundamental right to have healthy and pollution free environment, constitutes obligation of the State and also the fundamental duty of the citizens of India to protect and improve the natural environment. In the case of Samaj Parivartan Samudaya V. State of Karnataka, the court declared that intergeneration equity and sustainable development have become the integral part of the constitutional jurisprudence conferred by Article 21 of the Constitutional rights.

Indian Constitution is known as "the basic law of the land" from which all the laws draw their validity. Stockholm Declaration which is also known as the Magna Carta on Human Environment, India is also the signatory to this Convention. In 1976, Indian Parliament incorporated Article 48A and Article 51(A)(g) for the improvement and protection of environment to fulfill its obligation under the international agreement.

Environment Protection Act, 1986

When the Constitution was drafted, our constitution drafter was less concerned about environment and it is one of the reasons that we do not have any single Article which deals directly for the protection and improvement of environment. Environment Protection Act is a small piece of legislation consisting of 26 Sections. This Act was enacted under Article 253 of the Constitution of India to fulfil obligations under the Stockholm Declaration of 1972 because it is the dire need of the hour that government should evolve laws to protect and improve the flora and fauna, non-renewable resources, wildlife and human health. Sec 6, 8 and 25 of the Environment Protection Act, 1986 has the requisite provisions for the handling, management and disposal of hazardous bio-medical waste and it also gives the power to the Central government to make rules on various items including the power to lay down the procedure for handling and management of Biomedical waste.

Biomedical Rules, (Management and Handling), 2016

In 1988, Biomedical waste rules were first notified by the Ministry of

Environment and Forest to keep check and control the effective management and disposal of Biomedical and healthcare waste. These rules are applicable to all those persons who generate, collect, receive, store, transport, treat, dispose or handle biomedical waste in any form. According to these rules, it is the duty of the occupier i.e., a person who is the occupier of the property and who has the control of the institution or its premises to take all the necessary steps for the better handling of hazardous waste without any adverse impact on human beings and environment. These rules are applied to all persons who generate, collect, receive, store, transport, treat, dispose or handle bio-medical waste in any form including hospitals, nursing homes, clinics, dispensaries and veterinary hospitals, nursing homes etc. These rule came into force on 1998 by the Ministry of Environment and Forest in exercise of the power conferred under the Section 6, 8 and 25 of the Environment Protection Act, 1986. Main objective of this Act for the better management and handling of bio-medical waste which is generated by the hospitals, clinics, laboratories and other institution for the scientific management of bio-medical waste.

These rule laid down the duty on every occupier of an institution generating Bio-medical waste which includes a hospital, nursing home, pathological labs etc. to handle the waste properly without any adverse effect to Human Health and the Environment. It laid down the procedure for transportation, treatment, disposal and other forms of bio-medical waste and it also defines biomedical waste and who is occupier and the duty of the occupier for BMW. These rules also gone through various amendment and the Ministry of Environment and Forest notified new rules in Biomedical waste (Handling and Management) Rules, 2016. These rules amended in the year 2018 and 2019 under the provisions of the Environment Protection Act, 1986. Common Bio-Medical waste Treatment Facility (CBMWT) is also silent for the collection, reception, storage, transport, treatment, disposal or any other forms of Bio-medical waste. It is mandatory on the part of every healthcare institution to maintain the records relating to the generation reception, collection, transportation, storage, treatment, disposal and any other forms of biomedical waste for the five-year period.

Environment Policy, 2006

The main focus of this policy was to clean environment and making the positive contribution to the international efforts. To fill up the gap which exist in the present legislation and to protect the environment for the wellbeing of all. It also involves the local government like panchayats for the protection of environment. Principle objective of this policy is to protect the ecology and the equal access to all the natural resources to the all the sections of society especially the poor who are more dependent on the natural resources. To incorporate the environment concern while formulating the policies and programs for economic development.

INTERNATIONAL LEGAL FRAMEWORK

STOCKHOLM CONFERENCE, 1972

First International Convention on human environment law was held in Sweden where 107 states participated. It is a global treaty for the protection of environment and to deal with the problems of environment. The conference adopted an action plan relating to natural resources, human settlement, human health, territorial ecosystem, environment and development, ocean, energy, wildlife, territorial ecosystem, environment and development. It also highlights that there is a need for the international law relating to liability and compensation for the victims of pollution and other environment damage. It laid down 26 principles which were agreed and declared by the participating states. These principles were also known as Magna Carta on Human Environment.

❑

0000000000

Need to Protect Personal Liberty of An Individual

The Supreme Court exists to answer the cry of the citizens whose liberty has been taken away and thus, no case is small for the highest court of the land, a bench led by Chief Justice of India (CJI) Dhananjaya Y Chandrachud said on Friday, ordering the immediate release of a man sentenced to a total of 18 years in jail under nine separate cases of electricity theft in Uttar Pradesh.

"It is in the seemingly small and routine matters involving grievances of citizens that issues of moment, both in jurisprudential and constitutional terms, emerge...The right to personal liberty is a precious and inalienable right recognised by the Constitution. In attending to such grievances, the Supreme Court performs a plain constitutional duty, obligation and function; no more and no less," said the bench, which also comprised justice PS Narasimha.

The CJI's strong pitch for the top court's focus on liberty and rights comes two days after Union law minister Kiren Rijiju said in Parliament that the Supreme Court should not hear bail pleas when pendency of cases is high.

"If the Supreme Court starts hearing bail applications or frivolous PILs, it will cause lots of extra burden... More than 4 crore (40 million) cases are pending in trial courts where the government has a stake. We give money, support to create better infrastructure. But we have to ask the judiciary to ensure that only deserving people are given justice," Rijiju said on Wednesday during a debate on a bill to rename the New Delhi International Arbitration Centre as the India International Arbitration Centre.

But the CJI had a different view. On Friday, he said: "If the Supreme Court were not to interfere in the matters of personal liberty, what are we here for? That is why when you sit here, no case is too small for the Supreme Court and no case is too big. We are here to answer the call of conscience and the cry for liberty of the citizens. That is why we are here. These are not one-off cases. When you sit here and burn the midnight oil, you realise everyday there is one case or another like that."

The CJI?emphasised that cases that may appear "small", can involve the most important right of an individual — liberty.

While expressing "shock" at a man being ordered to remain behind bars for 18 years for the theft of power and some electrical equipment, justice

Chandrachud was emphatic about the role of the Supreme Court. “People ask us why we take up small cases. Will it not in the breach of Article 21 (right to life and liberty) if do not answer the cry for liberty of our citizens? We have to answer the call of conscience.”

In its order, the bench recorded: “The facts of the present case provide another instance, a glaring one at that, indicating a justification for this court to exercise its jurisdiction as a protector of the fundamental right to life and personal liberty inhering in every citizen. If the court were not to do so, a serious miscarriage of justice of the nature which has emerged in the present case would be allowed to persist and the voice of a citizen whose liberty has been abrogated would receive no attention.”

The order added: “The history of this Court indicates that it is in the seemingly small and routine matters involving grievances of citizens that issues of moment, both in jurisprudential and constitutional terms, emerge. The intervention by this court to protect the liberty of citizens is hence founded on sound constitutional principles embodied in Part III (enumerating fundamental rights) of the Constitution. The right to personal liberty is a precious and inalienable right recognised by the Constitution.”In the present case, the bench directed that the punishment of the petitioner convict run concurrently, which entails his immediate release from a jail in Bulandshahar. Under the nine separate cases, Iqram was handed down a jail term of two years each and the sentence was to run consecutively. As per the top court order on Friday, all the jail terms shall run at the same time. As Iqram has already spent more than three years behind bars, he is entitled to release immediately.

During the proceedings, the bench also took a grim view of the Allahabad high court’s indisposition to interfere with the jail term after Iqram filed a habeas corpus petition , contending the prison officials should compute his term of imprisonment concurrently.

“The high court ought to have intervened in the exercise of its jurisdiction by setting right the miscarriage of justice which would occur in the above manner, leaving the appellant to remain incarcerated for a period of 18 years in respect of his conviction and sentence in the nine sessions trials for offences essentially under the Electricity Act,” said the bench.

It added : “All said and done, you cannot elevate an electricity theft case to murder.”

(As reported in HT 17.12.2022)

❑